अपना अपना राक्षस

(लघु उपन्यास)

लक्ष्मीनारायण लाल

वर्तमान नहीं, समसामयिक जीवन प्रसंगों में आज कुमार अवस्था के नवयुवकों की मानसिक स्थितियों के ऊपर आधारित यह लघु उपन्यास वयस्क पाठकों के लिए निश्चय ही एक चुनौति सिद्व होगा। और कुमार अवस्था के पाठकों के लिये चित्ताकर्षक।

अभी तक हम बचपन को, कुमार बालकों के जीवन को देवताओं के ही लोक से बांधकर देखते रहे हैं, पर इस कथाकृति का कुमार नायक बताता है—हम सब के भीतर अपना अपना राक्षस भी है—इसे कौन देखेगा ? कुमार अवस्था के दो नवयुवक अपने अपने राक्षसों को अपने और अपने परिवार, समाज के भीतर से देखते ही नहीं, उनसे सीधे मुकाबिला भी करते हैं।

अब देवता नहीं रहे, फिर ये राक्षस क्या हैं ? लाल का यह नया लघु उपन्यास, इसी का एक यथार्थ कथा चित्र प्रस्तुत करता है।

□□□□

लल्ला––
अजय लाल को––––

२

आज दूसरी रात थी। और अरविंद की आँखों से नींद गायब थी। परेशान होकर जब वह बिस्तर से उठा, टेबुललैम्प जलाया तो उस वक्त घड़ी ठीक चार बजा रही थी। वह ग्यारह बजे रात से अबतक क्या–क्या सोचता रहा है––जैसे वह सब अरविंद भूलने लगा और कुर्सी पर बैठकर अपनी केमिस्ट्री प्रैक्टिकल की कापी पर लिखने लगा––

'पत्थर का एक टुकड़ा

एक पत्ता

एक बन्द दरवाजा। और वे तमाम चेहरे जिन्हें मैने अपने इन चौदह वर्षों के जीवन में देखा है––वे सब मेरे लिए बेमतलब हैं––बेमानी। नंगे और एकदम अकेले हम इस जीवन के बनवास में आये । हमने अपनी माताओं के चहरे तक नहीं देखे, जिनके अँधेरे गर्भ में हम उतने महीनों बन्दी थे। एक बन्दी जीवन मां के गर्भ का और दूसरा बनवास इस पृथ्वी पर जन्म लेने का हमें क्या पता कौन हैं ? मेरी बहन, मेरे मां–बाप और मेरे टीचर ... मेरे स्कूल के साथी ? किसने देखा है इन सबके दिल दिमाग में जाकर ?

'पत्थर का एक टुकड़ा, एक पत्ता और एक बन्द दरवाजा ...!'

'कौन ? क्या है अरू ? देखो राजू दा ... माँ।'

अरविंद की छोटी बहन मुक्ता अलग अपने बिस्तर पर पड़ी नींद में बड़बड़ा उठी। अरविंद ने गुस्से से बहन को देखा। वह हाथ में नन्हा–सा ट्रांजिस्टर लिये सो गयी थी।

'बेवकूफ!'

अरविंद के होठों से ये शब्द निकले। वह फिर न जाने आगे क्या–क्या लिखता रहा। उसे अचानक खयाल आया अगर राजूदा और मॉ को यह पता चला कि उसे दो रातों से इस तरह नींद नही आ रही है और वह इस तरह अपनी केमिस्ट्री प्रैक्टिकल की कापी बरबाद कर रहा है––फिर तो बड़ा अजीब हंगामा होगा मचेगा। माँ बोलेगी गुस्से से––नालायक सेहत का जरा भी खयाल नहीं ... राजूदा (पिताजी) कहेंगे––साइंस का विद्यार्थी इसे इन खयालों से क्या मतलब ? और उधर छोटी बहन टुपुक पड़ेगी––सुबह ही तो अच्छी नींद आती है पपा ...।

अरविंद अभी इसी सोलह जुलाई को चौदह साल का हुआ है। विज्ञान की नवीं क्लास में पढ़ रहा है। पिछले कई दिनों से वह माँ–बाप से लड़ता रहा है और उधर अपने क्लासटीचर केमिस्ट्री के अध्यापक मनचंदा साहब से भी ...।

अरविंद का स्वास्थ्य अच्छा है–भरे पूरे बदन का है–गोरौ–चिट्टा रंग, बड़ी–बड़ी आँखें। घुंघराले घने और बेहद काले सिर के बाल। उसे खूब भूख लगती है। खूब नींद आती है। पढ़ने में तेज है–खलने में सबसे आगे है। साथियों का बहुत अच्छा दोस्त है। पर अक्सर उसकी नींद, भूख और सारी अच्छाई न जाने कहां उड़ जाती है। उसे तब लगता है–'अनुशासन क्या बला है ? राजूदा बेमतलब बकवास किया करते हैं। ये टीचर लोग क्या पढ़ाते है। माँ क्या बड़बड़ करती है ? राजूदा के दिमाग में है एक महापुरूष–एक आदर्श युवक–जो वह खुद नहीं बन सके। माँ को जैसे दुनिया के सारे बच्चों के बारे में पता है। उसे अपने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर बेहद घमंड है–जबकी उसे कुछ भी नहीं पता है–यहाँ तक कि अपने ही दोनो बच्चों के बारे में। राजूदा और मां गॉव से चलकर कस्बे में होते हुए इलाहाबाद पार कर इस दिल्ली शहर आयें हैं न। काश, कहीं इन्हें पता चल जाये, इन बच्चों के दिल दिमाग में कितने–कितने जंगली तूफान हैं। इनके कैसे–कैसे दुख–डर, मान–अपमान, आशा निराशाएँ हैं तो ये पागल हो जोयँ। उन्हे क्या पता कि नौ साल से लेकर सोलह सत्तरह साल तक का अब हर बच्चा भ्रम और भय के सीकचों में बन्द अपने पिंजरों से सिर टकरा रहा है। अब हर नया लड़का स्वंय अपना राक्षस है और स्वंय अपना योद्धा– बिल्कुल बेहथियार और अकेला।

कमरे में पहले मां आयी। केमस्ट्री की उस कापी को उस तरह बरबाद करना, बिना मुंह हाथ धोये, कुल्ला ब्रश किये इस तरह 'च्युइंगम' खा खाकर पढ़ने का ढोंग करना उनके लिए असह्य हो गया। फिर पिता जी आये। मुक्ता जग गयी। और फिर वही सारा सिलसिला घर में शुरू हो गया, जो पिछले सात आठ महींनो से अक्सर शुरू हुआ है।

'यह क्या बकवास लिखा है ?'

मां के इस सवाल को राजूदा ने और गंभीर बनाया :

'तेरा दिमाग तो नहीं खराब है ? इसका आखिर मतलब क्या है ?'

अरविंद चुप– केवल चुप। वह क्या जवाब दे ? क्योंकि जवाब तो उसके पास है ही नहीं। और माँ बाप के पास जवाब ही जवाब हैं, राजूदा ने एसे ही कितने मौकों पर अपनी कहानी बतायी है– अपने लड़कपन की। फैजाबाद जिला, तहसील टांडा, गांव दूल्हेपुर। संयुक्त परिवार में पिता का जन्म। पिता के पिता–अर्थात् बाबा ही पूरे परिवार के मालिक। घर में न जाने किस बात पर मनमुटाव हुआ और घर में बटवारा हो गया। इस अलगाव का सबसे बड़ा सदमा, धक्का बाबा पर पड़ा और वह ज्यादा दिन नहीं जी पाये ... ।

अरविंद की उस चुप्पी से सब लोब तंग आकर उस कमरे से बाहर निकल गये थे। अरविंद टेबुल पर अपना माथा टिकाये पिता जी का वही बताया हुआ बचपन याद कर रहा था। पिता जी ने बताया था–उनके पिता को अपने उस घर से, उस घर के एक एक आदमी से इतना लगाव था–मोह और माया थी कि वह सबसे अलग जी नहीं सके। यह लगाव क्या चीज है ? यह मोह–माया क्या चीज है ?––अरविंद ने कितनी बार पिता जी से समझना चाहा है––वैसे वह समझ तो गया है––पर अनुभव नहीं कर पाया है। तभी उसे बाबा पर अक्सर हंसी आयी है। पिताजी तब बिल्कुल छः वर्ष के थे जब उनके पिता की मृत्यु हुई थी। तो क्या हुआ, अरविंद सोचता है, कोई भी कभी मर सकता है। पिता जी ने संघर्ष किया। गरीबी देखी। क्यों देखी ? न देखते। और देखा भी तो ये भी कोई कहने की बातें हैं और संघर्ष कौन नहीं करता इस दुनियां में ? एक किड़ा और एक नन्हा सा पौधा भी करता है अपनी जिंदगी के लिए और अकबर बादशाह ने भी वही किया।

बिना नहाये, कपड़े बदले अरविंद नाश्ते की मेज पर आया। मुक्ता बाकायदा नहा धोकर स्कूल जाने के कपड़े पहन कर बैठी थी।

राजूदा ने गुस्से में कहा, 'पता नहीं बिना नहाये, धोये, कपड़े बदले आजकल के ये लौंडे कैसे खाने पीने बैठते हैं और कैसे स्कूल जाते हैं ?'

माता जी ने व्यंग किया, 'देखो न, यह तुम्हारी बहन है––तुमसे छोटी ... ।'

'मेरी कोई बहन वहन नहीं है।'

अरविंद की यह बात सुनकर पिता जी सन्न रह गये। मां के हाथ से चाय का प्याला लुढ़क गया। फड़कते हुए होठों से बोलीं, 'तुम्हारी उम्र में जब हम लोग थे तो मजाल क्या कि हमारी जबान मां बाप के सामने खुले। और ऐसी बात अगर हमारे मुंह से निकली होती न, तो मां ने मेरी जबान खींच ली होती।'

'मैंने ऐसी कौन सी बात कह दी मां।'

नाश्ता छोड़कर अरविंद उठ खड़ा हुआ। मुक्ता आराम से नाश्ता करक 'टा–टा' 'बाई–बाई' कहती हुई 'स्कूल बस' की ओर भागी, अरविंद ने पुछा, 'माँ, क्या तुम मुक्ता की तरह बचपन में इस तरह 'टा–टा' 'बाई–बाई' कहती थीं ?'

'नहीं।'

'फिर तुम्हें वह क्यों नही बुरी लगती ?'

'ज़बान लड़ाने चले हो। इन्हीं से ज़बान लड़ाओ, जिन्होने तुम्हें सिर पर चढ़ाया है! बाप रे बाप! कभी हम भी तुम्हारी उमर के थे। पर मजाल क्या ... ।'

गुस्से से मां चली गयीं चौके में। पिता जी चुपचाप अखबार पढ़ने लगे थे। अरविंद के मुंह से निकला : राजूदा, मेरी बात सुनिए। कभी–कभी मुझे नहाना बिल्कुल नहीं अच्छा लगता––इसके मानी यह नहीं कि मुझे गंदगी पसंद है। मुझे पानी छूना बहुत अच्छा लगता है। जब मेरी तबियत होती तब मैं घन्टों नहाता रहता हूं––पर जब इच्छा ही न हो तो महज नहाने के लिये नहाना मुझे उस पानी के प्रति अपमान लगता है––जिसे मैं इतना चहाता हूं!' पिता जी ने घूरते हुए अरविंद को देखा, 'और मुक्ता तुम्हारी बहन नहीं है ?'

'यह वक्त क्या होता है ?'

'दैट मोमेंट !'

'उस वक्त मुझे एकाएक लगा कि मुक्ता मेरी बहन नहीं है।'

पिता जी ने गंभीरता से कहा, 'देखो बेटे, हम मोमेंट या क्षण की जिंदगी नहीं जीते। हम पूरी जिंदगी जीते हैं। जो हमारी बहन है, वह है, जो मां बाप है, वह है––यही धर्म है। धर्म माने जो हमारी जिन्दगी को हमसे जोड़े हुए है ... हमें धारण किये हुए है।' हमें 'सस्टेन' किये हुए है।'

'मतलब पिता जी, जो एक बार हमारा दुश्मन हो गया, वह हमेशा–हमेशा के लिये हमारा दुश्मन हो गया ?'

'बिल्कुल।'

'फिर यह पूरी जिंदगी क्या हुई––यही तो बाँटकर जीना हुआ––यह मेरा दोस्त है––यह मेरा दुश्मन है, यह मेरी बहन है, यह मेरी नौकरानी है ... यह मेरी ... ।'

'तुम्हें कुछ पता भी है जिंदगी के बारे में ?'

बेहद व्यंग से कहा पिता जी ने। और अरविंद के सामने फिर अपने उसी बचपन की तस्वीर पेश करने लगे––'घर से तीन मील दूर प्राइमरी स्कूल था मेरा। मैं पैदल, नंगे पांव जाता था पढ़ने। सुबह बासी खाना खाता था। स्कूल में दोपहर को केवल भूजा चबैना। पर अपने मास्टर साहब का भोजन बनाता था। दोपहर को फिर बर्तन मलता था और उनके पैर दबाता था। शाम को घर लौट कर गांव के लड़कों के साथ कबड्डी खेलता और फिर अखाड़े मे कुश्ती लड़ता। दंड बैठक करता। और रात को हनुमान चालीसा या दुर्गा सप्तशती का पाठ करके सो जाता। चरित्रवान–धर्मवान बनना बुनियाद थी उन दिनों की। सुबह मां के पैर छूता, स्कूल के मास्टर साहब के। इस तरह ईश्वर और मां–गुरू की कृपा से प्राइमरी की चौथी क्लास फर्स्ट क्लास में पास हुआ। आगे मिडिल स्कूल की पढ़ाई। मेरे गांव से मिडिल स्कूल छः मील की दूरी पर था। नित्य पैदल जाना और आना। पावों में जूते नहीं। सर्दियों में बदन पर एक भी ऊनी कपड़ा नहीं।

परीक्षा के दिनों में वहीं स्कूल के बोर्डिंग हाउस में टिकना होता था। खुद अपने हाथ से भोजन बनाना, पढ़ना और गुरू की सेवा––इसके अलावा हम लोग कुछ नहीं जानते थे। मिडिल स्कूल की सांतवी क्लास पास करके मेरा नाम शहर के हाई स्कूल में स्पेशल क्लास––अर्थात् छठी जमात में लिखा गया। हाई स्कूल का वह शहर मेरे गांव से बारह मील की दूरी पर था। वहां एक कमरे में हम तीन साथी रहते थे। स्वंय भोजन बनाते और पढ़ते। स्कूल के सारे खेल खेलते। स्कूल की मैगजीन निकालते और हर शनिवार की शाम घर वापस आते। सोमवार की सुबह घर से राशन बांधकर पैदल शहर पहुंचते। यह थी तपस्या हमारे जीवन की। हाई स्कूल फर्स्ट डिवीजन। फिर वहीं इंटरमीडियट सेकण्ड डिवीजन। इसके बाद धर वालों ने मना कर दिया कि राजू अब नौकरी करे––उसे अब आगे पढ़ने की कोई जरूरत नहीं। मेरी विधवा मां अकेली– मुझे गोद में समेट कर लगीं रोने।

मां ने अपना एक सोने का हार बेच दिया और वह धन लिये मैं घर से भाग निकला। मां का आशीष अपने माथे पर लिये मैं अकेला इलाहाबाद आया और मेरी यूनिवर्सिटी की शिक्षा शुरू हुई। घर पर मेरे दोनों चाचा मां को तरह तरह के कष्ट देते और मैंने 'टयूश्न' करके बी0 ए0 और एम0 ए0 की पढ़ाई पूरी कर ली।'

यह कहकर पिता जी चुप हो गये। अरविंद बिना नहाये स्कूल जाने लगा। आज उसके हाथों में किताबें भी न थीं। पिता जी ने कहा, 'हमारा बचपन बिल्कुल और था। हमारा वह जीवन अभाव और संघर्ष का था, इसलिए हममें धर्म की भावना जगी। हममें श्रद्धा थी मां बाप के प्रति, गुरूजन के लिए और अपने जीवन के लिए।'

अरविंद बोला एकाएक बीच में, 'ये बातें आप किससे कह रहे हैं ?'

'अरे, तुमसे।'

'मेरे लिये ये बातें बेमानी है।'

'क्यों ?'

'पता नहीं।

जैसे कुछ झनझना कर छूट गया हो––पिता और पुत्र के बीच। अरविंद साइकिल लिए स्कूल जाने लगा। मां ने तभी उस बंगले के बाहरी 'गेट' पर न जाने क्या कहा अरविंद से। अरविंद अजब झुंझलाहट से क्रोध में भर कर बोला :

'मां तुम भी अजीब बेवकूफी की बात करती हो। हटो जाओ मेरे सामने से।'

यह कहकर अरविंद स्कूल के रास्ते पर मुड़ गया। मां–बाप दुखी होकर एक दूसरे का मुंह निहारते रह गये।

अरविंद के पिता राजेन्द्र प्रसाद––जिन्हें सारे लोग राजूदा के ही नाम से पुकारते थे, दिल्ली के एक बड़े ओहदे पर थे। पैंतालिस साल की उमर। अच्छा स्वास्थ्य। सुन्दर चरित्र। सरल स्वभाव लेकिन बड़े महत्वकांक्षी। पत्नी, उमा बी–ए0 तक पढ़ी हुई सुन्दर व्यक्तित्व वाली और इससे ज्यादा हर विषय में अपने को परम अधिकारिणी मानने का स्वाभाव। उस पर

स्वंय को एक ओर आधुनिक नारी मानना और दूसरी ओर हिन्दू घरों की सारी परंपराओं से अपने को, पति को, दोनो बच्चों को जोड़े रखने की तीव्र इच्छा और विश्वास। इस परिवेश और वातावरण में पले थे अरविंद और मुक्ता।

राजूदा ठीक साढ़े नौ बजे दफ्तर चले गये। उमा फिर घर के कामों के संचालन में लग गयी। नौकर रसोई घर में लगा था। झाड़ू पोंछा और कपड़े धाने वाली नौकरानी गंगा कमरों में झाड़ू पोंछा देने लगी। बंगले के पीछे 'किचन गार्डेन' में आकर उमा सरकारी माली से जाड़े की सब्जियां लगाने के बारे में बहस करने लगीं। उमा को जल्दी थी, क्योंकि घर गृहस्थी का सारा काम साढ़े दस बजे तक निपटाकर उसे ठीक ग्यारह बजे 'आफिसर्स वाइब्स क्लब' में पहूंचना था। इस बीच उसे नहाधोकर करीने से मेकअप और जूड़ा बनाकर फटाफट तैयार हो बाहर जाना था।

उधर अरविंद जैसे 'रामदयाल हायर सेकेन्ड्री स्कूल' के गेट के भीतर दाखिल हुआ, असका 'क्लास फेलो' दोस्त श्याम भाटिया उसे मिल गया। दोनों 'फिजिक्स' क्लास में गये। टीचर गैरहाजिर थे। सारे लड़के स्कूल के बरामदे में, कमरे में शोर कर रहे थे या टीचरों की बुराइयां कर रहे थे।

अगला पीरियड केमिस्ट्री प्रैक्टिकल का था। वही केमिस्ट्री टीचर मनचंदा साहब सामने––जिनसे पिछले दिनों से अरविंद की नहीं बन पा रही थी। और बात भी ऐसी थी। मनचंदा साहब ने श्याम भाटिया से सौ रूपये महीने ट्यूशन मार ली थी। वह उसे स्कूल में ही आधा–पौन घंटा पढ़ा देते थे और अब उनकी स्कीम थी इसी ट्यूशन के चक्कर में अरविंद को भी फांस लेने की। और अरविंद को इसी बात से नफरत हो चली थी। वह क्यों जबरदस्ती ट्यूशन कराये। उसे अस्सी–प्रतिशत से कम अंक नही मिलते केमिस्ट्री में। मनचंदा साहब पढ़ाते भी क्या हैं श्याम को। बस, उसके धनी बाप से हर महीने रूपये झटकते हैं। श्याम को कुछ भी तो फायदा नहीं है इस ट्यूशन से। इन्हीं बातों से उसे चिढ़ है मनचन्दा साहब से। और जब से मनचंदा साहब ने यह कहा है कि 'अरविंद, तुम यह न भूलो कि केमिस्ट्री के प्रैक्टिकल के इम्तहान भी होने है और केमिस्ट्री प्रैक्टिकल तुम्हे पास भी करना है।'

'जी हां, मैं बड़े ठाट से पास करूँगा।'

'घमंड मत करो, बड़ों बड़ों को देखा है मैंने।'

'मुझे भी देख लीजिएगा सर।'

'मैं तुम्हारे भले के लिये कह रहा हुं––मुझसे ट्यूशन करा लो। तुम और श्याम एक संग–– कितना अच्छा रहेगा।'

'यह मेरे लिए बेकार है सर।'

'मैं मानता हूं––श्याम भाटिया के पिता बड़े व्यापारी धनी लोग हैं, तुम्हारे पिता सरकारी अफसर हैं––चलो तुमसे दस रूपये कम ले लूंगा, समझे।'

बस इसके बाद अरविंद असह्य हो गया। वह खून का जैसे घूंट पीकर वहां से मुड़ा और श्याम भाटिया से बोला, 'यह टीचर नहीं लुटेरा है स्साला, मत लो इससे ट्यूशन।' श्याम हंसने लगा और पर्स खोलकर दिखाने लगा, 'देखो, ये सारे दस दस रूपये के नोट हैं। मैं इन्हीं नोटों से किसी भी टीचर को खरीद सकता हूं––जैसे मेरे डैडी इन्हीं नोटों से मुझे खरीदते हैं।'

अरविंद अपने दोस्त श्याम भाटिया का मुंह देखता रह गया। श्याम बड़े मजे से बोलता चला जा रहा था, 'दोस्त हमारा जमाना पढ़ाई लिखाई का नहीं, केवल ऐश करने का है––यह ऐश जैसे भी हो।'

'नही, बिना पढ़े लिखे कुछ नहीं हो सकता। ये बेईमान लोग, ये दुश्मन यही तो चाहते हैं कि यह नयी पीढ़ी इसी तरह अधेंरे में भटक जाये, ताकि ये कभी विद्रोह न कर सकें––इस सारे झुठ–अन्याय और बेईमानी के खिलाफ।'

श्याम हंसता रहा। अरविंद आश्चर्य से उसका मुंह ताकता रहा। श्याम उसे संग लिये अपने घर आया। पूसारोड पर उसका आलीशान बंगला था। तीन तीन कारें, नौकर, माली, आया, ड्राईवर। ठीक छः बजे मनचंदा साहब श्याम को ट्यूशन पढ़ाने आये। श्याम अपने दोस्त अरविंद के साथ ड्राइंग रूम में बैठा हुआ 'पाप म्यूजिक' के रिकर्डस सुन रहा था। मनचंदा साहब बाहर बरामदे वाले कमरे में बैठे थे। दो बार नौकर आया श्याम को बुलाने। श्याम ने कहलवा दिया कि टूयूटर का काम है आना, बैठकर चले जाना। बोलो तशरीफ ले जांय, आज मेरे पास वक्त नहीं है।

कुछ पीना चाहें तो बोतल खोलकर थोड़ी सी दे देना ···।

थोड़ी देर बाद अरविंद ने देखा श्याम के डैडी शिमला से आये हैं––इम्पाला गाड़ी में, उसकी ममी के साथ। सारा बंगला चहल पहल से एकाएक भर गया। डैडी ममी के साथ श्याम का कितना दोस्ताना, स्नेहमय, खुला सा रिश्ता है––यह

देखकर उस दिन अरविंद का मन भर गया। उन्होंने अरविंद के साथ भी वही स्नेह पूर्ण दोस्ताना भाव दिखाया––यह उसके लिये बहुत नयी बात थी।

रात को अपने घर लौटकर अरविंद ने श्याम के ममी डैडी की बड़ाई शुरू की और अपने माता पिताजी की आलोचना। बातें बढ़ती चली गयीं और एक क्षण ऐसा आया जब उसके मुंह से अचानक मनचंदा साहब के लिये एक भद्दी सी गाली निकली तभी पिता जी का एक झापड़ उसके मुंह पर तड़प उठा। वह रोया नहीं। रात को जब मां ने उसे भोजन के लिये बुलाया, तब भी वह नहीं उठा।

रात को न जाने कब वह सोया और कब उठकर फिर अपनी उसी केमिस्ट्री प्रैक्टिकल की कापी पर लिखने लगा––हम महानता पर, देवत्व पर विश्वास नहीं करना चाहते पर हम अपने टीचरों और माता पिताओं पर जरूर विश्वास करना चाहते हैं, पर हमारे माता–पिता, टीचर, गुरूजन ये लोग हमें इतना छोटा क्यों बना देना चाहते हैं···?

2

उस दिन मुक्ता के स्कूल में छुट्टी थी। वह सुबह आठ बजे ही लान में लड़कियों के साथ खेल रही थी। अरविंद दूसरी ओर गार्डन में कुर्सी पर बैठा हुआ आसमान में दौड़ते हुए क्वार महीने के बादलों को देख रहा था। ऐसे समय वह हमेशा एक छोटे से बादल के टुकड़े को अपना दोस्त बना लेता था और उससे वह बड़े बड़े बादलों के टुकड़ों से लड़ता था। पिछले कई दिनों से वह लगातार मां–पिता जी और उधर स्कूल में मनचंदा साहब से लड़ता आ रहा था। और आज वह बेहद उदास और नाराज था। आज उसने एक काले बादल के बड़े से टुकड़े को दोस्त बनाया और उससे बड़े बड़े टुकड़ों से लड़ाई लड़ रहा था। उसका बादल शेष सारे बादलों से बुरी तरह लड़ रहा था, तभी न जाने कहां दौड़ते दौड़ते उसका बादल गायब हो गया। वह उसे लाचार बेसब्र ढूंढता रहा, तभी मुक्ता अपनी सहेलियों सहित उधर दौड़ती हुई आयी। अरविंद ने झुंझलाकर उसकी चोटी पकड़ ली :

'क्या शोर मचा रखा है ?'

'तुमसे मतलब ?'

बस, अरविंद ने उसे एक झापड़ दिया। वह रोती हुई बोली, 'बोर कहीं के' न खुद खेलते हैं न दूसरों को खेलेने देते हैं। बड़े लाट साहब बने रहते हैं। मेरी छुट्टी है, तुम यहां बैठे क्या झक मार रहे हो ? अपने स्कूल जाओ और वहीं दिखाओं अपनी लाट साहबी।'

अरविंद ने उसे फिर मारना चाहा, मुक्ता, चिल्लाती हुई भीतर बरामदे से अंदर भागी। अरविंद उसे दौड़ा रहा था, तभी पिता जी ने अरविंद को पकड़ लिया।

'यह क्या बत्तमीजी है ? क्यों मारते हो उसे ?'

'इसकी गलती नहीं देखते आप ? '

'क्या है गलती ?'

बेवकूफ, हरवक्त अपनी सहेलियों से घिरी हुई वही चांव चांव, यह कभी कुछ सोचती भी है लिखती पढ़ती भी है। वही थर्ड डिवीजन के नंबर···।'

बस, बात से बात बढ़ती गयी। एक ओर मां, पिता जी और मुक्ता दुसरी अकेला अरविंद। सारी जहान की बातें वहां होने लगीं। मां बाप अपने अपने लड़कपन की बातों की दुहाई देते रहे। अपने भाई बहन के साथ कर्तव्य की बातें वहां फैलती चली जा रही थीं। सहसा अरविंद के मुंह से निकला 'ये सारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं भावना भावना रिश्ता और कर्तव्य···गुलाम बनाने की चाले हैं और कुछ नहीं।

मां और पिता जी बारबार एक ही बात कह रहे थे। आजादी की बात। उन्हें इस उम्र में इतनी आजादी नहीं थी, जितनी अब इन लड़कों को मिली है और दी जा रही है। तब भय था डर था और लाज शरम थी, अब सिर्फ है आजादी, अधिकार और जिम्मेदारी जरा भी नहीं।

अरविंद मां बाप से लड़ रहा था तर्क और उदाहरण दे रहा था। कहां है इन लड़कों की आजादी ? हरवक्त तो मां–बाप इनकी रक्षा में खड़े रहते हैं। हर वक्त इन पर निगाह। स्कूल जाने के लिए सवारी। स्कूल से घर। घर से स्कूल। ना कहीं खेल है ना कहीं आजादी। बच्चे सड़क पर मत जायो . . . कुचल जायोगे . . . स्कूल में खेलने की जगह नहीं। दोस्तों के साथ घर में ही, ड्राईग रूम में ही सड़ो। वही रेडियो के सड़े हुऐ गाने, वही नानसेन्स किताबें, वही नपी तुली बातें। वही फिल्म से टीचरों तक की तंग दुनियां। इनकी दुनिया है महज सीढ़ीयों पर बैठकर बातें करना। 'च्युइंगम' मुंह में भरे हुए अंगेजी हिन्दी की खिचड़ी भाषा में बेमतलब की बातें। ये आजाद कहां है ? कैसे है ? हां, आजाद इनके मां–बाप थे––वे गाँव कस्बों के परिवार घर वे स्कूल–मदरसे, जहां लड़कों पर इत्ता ध्यान नहीं दिया जाता था, जहां आजादी थी जैसा जो चाहे वैसा रहे, जैसा जो चाहे वैसा करे।

इस तरह बड़बड़ता हुआ अरविंद स्कूल चला गया। पर अरविंद की बातें राजूदा को घेरे हुये थीं। अरविंद सच कहता है–आजादी सच मुच हमें थी हम घर से स्कूल के रास्ते भर खेलते जाते थे। हम स्कूल ना भी जांय–कोई डर नहीं था। संयुक्त परिवार में कौन ध्यान देता था लड़के बच्चों पर ? तब इतनी किताबें नहीं थी। तब ऐसे टीचर्स भी नहीं थे–इतनी दौड़ धुप भी नहीं थी।

उधर स्कूल पहुंचकर अरविंद श्याम भाटिया के संग बरामदे में खड़ा था। इस दिन स्कूल के टिचर्स हाल कमरे में कोई मीटिंग कर रहे थे अपनी तनखाह बढ़ाने के लिये। प्रिंसिपल साहब कहीं और मीटिंग में गये हुए थे। स्कूल के सारे लड़के इधर उधर शोर मचा रहे थे–कुर्सी मेजों से खेल रहे थे।

श्याम भाटिया ने खेल के चपरासी को दो रूपये दिये। उसने क्रिकेट खेलने के सामान दिये। छः सात लकड़े 'केमिस्ट्री प्रैक्टिकल रूम' के बाहर छोटे से मैदान में क्रिकेट खेलने लगे। अरविंद गेंद फेंक रहा था, श्याम भाटिया के हाथ में बल्ला था। काफी देर से वह 'आउट' नहीं हो रहा था। सहसा अरविंद ने बड़ी तेज 'बालिंग' की। श्याम ने भरपूर 'हिट' किया––पूरी ताकत से। गेंद केमिस्ट्री रूम की बंद खिड़िकी के षीषे को तोड़ता हुआ भीतर जाकर टकराया केमिकल भरे एक बड़े शीषे के बर्तन से। सारा केमिकल फर्ष पर बह गया। चपरासी ने दौड़कर मनचंदा साहब को इत्तला दी।

अरविंद, श्याम भाटिया सहित सारे लड़के वहां से चंपत हो गये थे। मगर भागकर जाते कहां ? अगले दिन श्याम और अरविंद पकड़े गये। श्याम को मनचंदा साहब ने कुछ नहीं कहा, सारा अपराध मढ़ दिया केवल अरविंद पर। गैरकानूनी ढंग से मनचंदा साहब ने अरविंद के पांच बेंत मारे और उस पर जुर्माना किया––सवा सौ रूपये का। प्रिंसपल से हस्ताक्षर कराके एक खत दिया अरविंद के पिता के नाम। उस खत की पूरी बात पढ़कर अरविंद से वह सारा झुठ, अन्याय और पक्षपात सहा न गया। उसे पता था––यह खत पढ़कर पिता जी उल्टे उसे ही सजा देंगे और एक सचरित्र––आदर्ष बालक की तसवीर खड़ी करेंगे। अपने बचपन के उदाहरण देंगे और कहेंगे जाओ मनचंदा साहब के पैर छूकर माफी मांगो। पिताजी खुद माफी मांगने अयेंगे स्कूल में। क्योंकि सवा सौ रूपये उनके लिये ज्यादा महंगे पड़ेगे।

यह सब एक सेकेन्ड में सोचते हुए अरविंद ने उस खत को फाड़ दिया और उसे मनचंदा साहब के मुंह पर फेंककर भागा। जीवन में पहली बार इस तरह का आत्मविष्वास उसमें जगा। वह इस घटना से डरकर पैदल भागता चला गया। साइकिल वहीं स्कूल में छुटी रह गयी। किताबें––कापियां उसने एक चाय की दुकान पर रख दीं। उसे कत्तई पता नहीं, वह कहां–किधर क्यों चला जा रहा है ? बस वह चला जा रहा था और चलते चलते ठीक चार बजे वह दिल्ली रेलवे स्टेषन पहुंचा।

एकाएक उसने देखा––उसका दोस्त श्याम भाटिया उसके पीछे पीछे चला आ रहा है।
'अरे श्याम, तुम कहां ? यहां कैसे ?'
'अमे यार, आखिर दोस्ती भी तो किसी चिड़िया का नाम है।'

'लेकिन ···।'

'लेकिन वेकिन कुछ नहीं। मनचंदा को मारो गोली। उसे तो वैसा करना ही था, मगर तुमने यार जो उसके मुंह पर कागज फाड़कर फेंका, वह तो कमाल ही था। तबियत खुष हो गयी तुझसे। बोलो अब क्या प्रोग्राम है ?'

अरविंद उदासी से बोला, 'घर नहीं जाऊंगा तबियत कहती है अब न कभी उस घर जाऊं, ना उस स्कूल, जहां लोग इतने नासमझ हैं।'

'अच्छा यार, चलो षिमला चलते हैं। हां यार, मेरा मुंह क्या देखता है ? षिमला में हमारी कोठी है। वहां डैडी का कारखाना है।'

'मगर कैसे ?'

'यह देखो, इतने रूपये। यहां से कालका स्टेषन तक गाड़ी, उधर टैक्सी, और षिमला जिन्दाबाद।'

सच, दोनों उसी तरह रात को गाड़ी में बैठ गये और अगले दिन ठीक ढाई बजे षिमला पहुंच गये। षिमला में अपनी कोठी पहुंचते ही श्याम ने दिल्ली फोन करके अपनी ममी को सब कुछ बता दिया।

रात को जब दोंनो भोजन करके सोने चले तो अरविंद को न जाने क्यों पिता जी की याद आयी। उसकी इच्छा हुई वह भी राजूदा से टेलीफोन पर बातें कर ले। निश्चय वह लोग बहुत परेशान होगें। पर उसने अपन आप को रोक लिया। वह तो चाहता ही यही है कि वे लोग उसके लिये परेशान हों। वे सब महसूस करें कि अन्याय का फल कितना कड़वा होता है। लड़के इतने कमजोर––गये गुजरे नहीं हैं कि जो चाहे उन्हें ठोकर मारकर चला जाय। एक तरफ सारी दुनियां कहती है कि यही लड़के हैं हमारे भविष्य, स्वप्न और भावी नागरिक, वगैरह वगैरह ···दूसरी तरफ वही लोग इन लड़कों को सिखाते हैं अन्याय सहन, झूठ बेइमानी दगाबाजी और न जाने क्या क्या ····।

अरविंद की आंख एकाएक सुबह चार बजे खुली। उसने देखा––श्याम पलंग पर नहीं है। 'बाथरूम' में देखा, वहां भी नहीं। इधर उधर कमरों में, बाहर बरामदों में देखा, कहीं भी नहीं। वह पलंग पर बैठा एक मैगजीन पढ़ने लगा।

ठीक पांच बजते बजते श्याम वापस कमरे में आया। अरविंद पूछने लगा कि वह कहां था ? उसने बताया––घुमने गया था। अरविंद की जिज्ञासा बढ़ गयी। रात को इस तरह घुमने ? श्याम ने फिर बताया––वह फैक्ट्री गया था। कैसी फैक्ट्री ? इस तरह रात में कौन सी फैक्ट्री चलती है ? अरविंद का कौतूहल बढ़ता चला गया। पर जब उसने देखा श्याम कुछ साफ साफ बताना नहीं चाहता तो अरविंद चुप हो गया। यह अरविंद को अच्छा नहीं लगता कि वह किसी के भी बारे में इतनी खोज बीन करे। दोस्त के माने यह नहीं कि दोस्त अपनी निजी बातें न रहें। उसकी हर बात जान ही ली जाय। सब की निजी स्वतंत्रता सुरक्षित रहनी चाहिये। अरविंद के ऐसे अनेक गंभीर स्वाभावों की श्याम बड़ी कदर करता है और उसे अपना प्यारा साथी मानता है।

दिन के वक्त दोनों शिमला बाजार घूमने गये। शाम तक दोनो दूर तक पैदल घूमते रहे। घर लौटते समय रास्ते में श्याम ने अरविंद को दस दस और सौ के कुछ बिल्कुल ताजे नोटस दिखाये।

'देखो यार, ताजे नोट कितने अच्छे लगते है !'

'हां यार बिल्कुल !'

इसके आगे अरविंद ने जरा भी कौतूहल नहीं दिखाया श्याम को बड़ा ताज्जुब हुआ कि अरविंद को उन ताजे नोटों के प्रति जरी भी दिलचस्पी नहीं। श्याम उसे दस दस के कुछ नोट देने लगा पर उसने लेने से भी इन्कार किया। कोठी पर लौटकर दोनों चाय पीने लगे। श्याम कहने लगा––'इन्हीं नोटों के लिये दुनिया इतनी पागल है। पिता लोग इसी के लिये नौकरियां करते है, मनचंदा जैसे टीचर्स इसी के लिये इतनी बेईमानियां करते है। मेरी तबियत होती है कि ये नोट मैं सब को बाट दूं, और कहूं कि इंसान से बड़ी चीज और कुछ भी नहीं।

अरविंद हंस पड़ा, 'कोई सुनेगा तो कहेगा, छोटा मुंह बड़ी बात।'

'यह तो हमेशा ही कहा जायेगा, चाहे हम बुढ़ढे ही क्यों न हो जायं।'

रात को बड़ी देर तक दोनों बाते करते रहे––खास तौर पर अपने माता पिताओं की बातें श्याम कहता रहा––उसके डेडी जो चाहते हैं, वह निसंकोच प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये कोई भी काम असंभव नहीं है। और उनकी विशेषता यह कि वह न अपने बचपन या लड़कपन की दुहाई देते हैं न अपने मनुष्य को अपने पुत्र पर लादते हैं। वह मनुष्य को बहुत बड़ा–चढ़ा कर नहीं देखते। मनुष्य महान है, वह देवता है उसे यह होना चाहिये, वह होना चाहिये––ऐसा न मानकर वह मनुष्य और समाज को उसकी सीमाओं में ही कबूल करते हैं। इसलिये डैडी के साथ कभी घुटन नहीं होती। करीब करीब यही बात ममी के साथ भी है।

ठीक इसके विपरीत अरविंद अपने पिता की तस्वीर प्रकट करता रहा––पिता जी महत्वाकांक्षी हैं। उन्हें हरदम किसी न किसी चीज का अभाव बना रहता है। वह अपने को, अपनी जिन्दगी को हर वक्त अपने से बड़ों की तुलना में देखते रहते हैं। और इस तुलना में जो अतंर दिखता है उसे भरने के लिये वह कर्म नहीं करते, निर्णय नहीं लेते, बल्कि उस अतंर को भरते हैं––बड़ी ऊँची ऊँची बातों से––चरित्र, आदर्श, नैतिकता और न जाने क्या क्या। यही प्रभाव मां पर भी पड़ा है।

श्याम ने सोने से पहले कहा, 'बड़ी अजीब बात है दोस्त, हर कोई के साथ बचपन से ही उसका अपना एक राक्षस और एक देवता संग ले लेता है और ताजिन्दगी इंसान एक से लड़कर अपने को नष्ट करता है और दूसरे को पाने के संघर्ष में अपने को तबा कर देता है।'

अरविंद के मुंह से फिर वही निकला, 'यार छोटा मुंह बड़ी बात। चूंकि मनुष्य बना रहना बहुत मुश्किल पड़ता है, शायद तभी इन्सान अपने संग एक राक्षस पैदा कर लेता है, दूसरी ओर एक देवता . . .। और अपनी सहज जिन्दगी को 'डान क्विक्जोट' की जिन्दगी बना लेता है।

तभी बड़ी तेज हवा का झोंका उनके कमरे में आया। कमरे की सारी चीजें जैसे कांप गयीं। परदे उड़ने लगे। थोड़ी ही देर बाद बारिश शुरू हुई।

वे दोनों बातें करते करते उसी तरह सो गये।

ठीक रात के तीन बजे श्याम चुपचाप कमरे से बाहर जाने लगा। अरविंद की आखें खुल गयीं। उसके मुंह से निकला,

'इस बारिश में अकेले कहां जाओगे ?'

'क्यों ?'

'अगर जाना ही है तो मुझे भी साथ ले लो।'

'सब का अपना राक्षस है न, और जाना तो अकेले ही होता है डियर . . .।'

यह कहकर श्याम हंस पड़ा। अरविंद को अपने संग ले लिया। बाहर चारों ओर अंधेरा था। श्याम उसी अंधेरे में बढ़ रहा था। अरविंद ने पुछा, 'पर जाना कहां है ?'

'बस, चुपचाप मेरे पीछे–पीछे चले आओ। एक ऐसी चीज दिखाऊंगा कि बस, देखते ही रह जाओगे।'

कोठी के बाहर निकलकर श्याम उस बारिश में सामने अहाते में चलने लगा। एक छोटे से दो मंजिले बंगले में घुसा। चारों ओर घुप अंधेरा और सन्नाटा। धीरे से बंगले का एक चोर दरवाजा खोलकर भीतर घुसा। अरविंद अब तक पूरी तरह से घबड़ा गया, 'यार, कहां जा रहे हो ?'

शीऽऽ करके श्याम ने उसे चुप कर दिया। उसका हाथ पकड़े वह सीढ़ियों से धीरे धीरे जमीन के नीचे तहखाने में उतरने लगा। अरविंद को लगा श्याम उसे किसी पाताल लोक में ले जा रहा है। नीचे से एक मशीन चलने की आवाज आ रही थी। एकाएक नीचे उस कमरे में पहुंच कर अरविंद आश्चर्यचकित रह गया। वहां नोट छप रहे थे। दोनों आदमियों से श्याम ने इशारे से बातें कीं और वे लोग भी इशारे से ही बातें करके अपने काम में लगे रहे।

अरविंद का सिर चक्कर काटने लगा। उसमें एक अजीब तरह का भय मिला हुआ कौतुहल भरने लगा। पर अरविंद को जरा भी कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। उसके सामने सारा रहस्य जैसे अपने आप ही खुलने लगा। पर उसके भय में कोई कमी न हुई। वह श्याम के संग जल्द ही उस स्थान से बाहर ऊपर चला आया।

कमरे में जब दोनों वापस आये तो अरविंद का घबड़ाया हुआ चेहरा देखकर श्याम हंस पड़ा। अरविंद एकटक श्याम का मुंह निहारता रह गया।

श्याम बोला, 'यार तुम तो बड़े डरपोक हो।'

'हां, हूं।'

आगे दोनों के बीच एक अजब सा सन्नाटा खिच गया। श्याम ने कहा, 'यही है मेरे डैडी का 'बिजनेस–इन्डस्ट्री' . . . क्या समझे ?

अरविंद से कुछ भी न बोला गया।

श्याम ने फिर कहा, 'अब बोलो, मैं क्यों पढू ? अखिर सब कुछ तो इसी धन के लिये ही तो है।

अरविंद के मुंह से निकला, 'यह जाली नोटों के छापने का धंधा कितना खतरनाक है, तुम्हें पता भी है ?'

'खतरनाक पूरी जिंदगी नहीं है ?'

'नहीं, यह धोखा है तुम्हें इससे एकदम दूर रहना चाहिये।'

'क्यों ?'

'पता नहीं, तुम मुझसे तर्क मत करो।'

सुबह हो गयी। अरविंद बेहद उदास था। श्याम उसे खुश करने में लगा था। अगले दिनों के अच्छे से अच्छे प्रोग्राम बना रहा था।

अरविंद ने पुछा, 'तुमने मुझे यह दिखाया क्यों ?

'क्योंकि तुम मेरे दोस्त हो।'

'कोई किसी का दोस्त बोस्त नहीं।'

'बकोमत।'

'श्याम, तुम अपने डैडी से प्यार करते हो ?'

'हां, बिल्कुल। उन्हें धन की बेहद जरूरत थी और है––सो उन्होंने यह धंधा कर लिया। वरना क्या औरों के पिताओं और डैडियों की तरह वह जरूरतों की आग में जलते और अभावों के नरक भोगते ?'

श्याम की यह बात सुनकर अरविंद सन्न सा रह गया। अरविंद के सामने उसके पिता की तस्वीर कांपने लगी। मां का वह चेहरा घूमने लगा। वह उन दोनों चहरों के आरपार न जाने कितने मुख निहारने लगा। उसके कानों में अब भी श्याम की आगे की बातें टकराने लगीं। श्याम कहता चला जा रहा था, 'जो जरूरतों और अभावों को महज पैदा करते रहते हैं, और उन्हे पूरा करने की हिम्मत नहीं रखते, वही लोग उसकी पूर्ति महज ख्याली बातों से करते हैं––ईमानदारी की, चरित्र की, आदर्शों की बातों से।'

अरविंद उसका तमतमाया हुआ चेहरा देख रहा था और उसके चेहरे के पीछे वह एक ओर अपने माता पिता का चहरा देख रहा था, दूसरी ओर मनचंदा साहब का। अरविंद ने पूछा, 'अगर ईमानदारी, सच्चाई कुछ भी नहीं है तो मनुष्य जिंदा क्यों है ? तुम्हारे डैडी जाली नोट बनाने का काम इस तरह छिपकर क्यों करते हैं ? वह खुलेआम क्यों नहीं करते ?'

'वह खुलेआम हम लोग करेंगे––हमारी नयी पीढ़ी के लड़के।'

'नहीं, मैं यह नहीं कर सकता।'

'क्यों ? तुम अपने पिता जी की राह पर चलोगे ?'

'मैंने अपना रास्ता तो नहीं जानता अभी, पर तुम्हारी बात से मुझे जरूर ताज्जुब हो रहा है––तुम अपने डैडी के ही रास्ते पर खुले आम चलोगे।'

श्याम हंस पड़ा, 'मेरे डैडी का यह रास्ता ! यह रास्ता किसी दिन एकाएक खत्म जायेगा। पुलिस को जिस दिन शक हुआ या खबर मिली, सब धांय से उड़ जायेगा। हां एक ही मिनट में खेल खत्म, पैसा हजम।'

यह कहते कहते श्याम उठ पड़ा और दौड़ता हुआ न जाने कहां से एक गिटार ले आया और अनापशनाप ढंग से बजा बजा कर नाचने लगा। कमरे की सारी चीजों को उठा उठाकर फेंकने लगा। पागलों की तरह चीख चीख कर अग्रेजी में गाने लगा, जिसका मतलब था :

मुझे अपने डैडी से नफरत का भी रिश्ता नहीं है
डैडी को उनके पापा से प्रेम का रिश्ता था
तभी मेरे डैडी मुझे चिंम्पाजी लगते हैं
मै चिम्पाजी क्या मेढक भी नहीं लगूंगा पर मैं चाहूंगा।
मैं अपनी दुनियां को कभी बांटकर न देखूं डैडी–पिताओं के बनाये घरौंदों पर बंदरों के मुखौटो पर कतई यकीन न करूं
सिर्फ यकीन करूं अपने राक्षस पर
डैडी के देवताओं का स्वर्ग वास हो गया ...।

अरविंद ने दौड़कर श्याम को पकड़ लिया। श्याम ने अपनी गिटार को फर्श पर दे मारा। उसके तार टूटकर शून्य में झन झना उठे। श्याम का सिर अपने अंक में गड़ाये अरविंद पलंग पर बैठ गया था। श्याम जैसे बेहोशी की हालत में चुपचाप आखें मूदे पड़ा था।

श्याम बेखबर सो गया। दिन काफी चढ़ आया था। दो बार नौकर आया––नाश्ते पर बुलाने के लिये। पर अरविंद नौकर को समझाता रहा––'श्याम जब सोकर उठेगा तभी नाश्ता हो सकेगा।'

पर वह नौकर पुराना था। दिल्ली और शिमला के बीच वही पिछले सात सालों से चक्कर लगा रहा था। उसका नाम था––बीबीसिंह––पटियाले का जाट वह बढ़कर श्याम के पलंग के सिरहाने न जाने क्या टटोलने लगा। कागज की एक पुड़िया पाकर हंसने लगा, देखो साहब, यह बात हुई ना, मेरा जो शक था, वही हुआ। बेबी ने खालिया जहरीला नशा। यह देखो ...।'

अरविंद ने पुड़िया खोलकर देखा। उसे सूंघा और कहा, 'इसमें क्या है ?' बीबीसिंह बोला, 'खालो न तुम भी, पता चल जायेगा !'

दौड़ा हुआ बीबीसिंह डाक्टर बुला लाया। डाक्टर ने दवा दी। इंजेक्शन लगाये। अरविंद ने पूछा, 'यह क्या चीज है डाक्टर साहब ?'

डाक्टर साहब ने उस पुड़िया को खिड़की से नीचे चीड़ के जंगल में फेंकते हुए कहा, 'डैम इट।'

संध्या होते होते श्याम की तबियत ठीक हुई। बीबीसिंह ने सिर्फ इतना कहा, 'दुबारा ऐसा काम किया तो डैडी को बताये बिना नहीं रहूँगा।'

'अबे जा, दुबारा डैडी के सामने खाऊँगा।'

अगले दिन दोनों चुपचाप शिमला से चल पड़े। चंडीगढ़ तक टैक्सी से आये। आगे दोनों ने पैदल यात्रा शुरू की।

दोनों पैदल घूमते रहे इधर से उधर–गांव, कस्बा, बाजार और छोटे छोटे शहर––पहले पंजाब फिर हरियाना। गांव के एक स्कूल में देखा–गरीब किसान और मजदूरों के लड़के फटे–पुराने और मैले कपड़ों में नगें पांव स्कूल आते हैं। गांव का टीचर मेज पर टांग पसार कर सो रहा है और लड़के मेंढ़कों की तरह एक सुर में पहाड़ा रट रहे हैं––चार के चार, चार दूना आठ, चार तियां बाराह ...। जैसे ही लड़के मास्टर साहब का खर्राटा सुनकर हंसते हैं, वैसे ही मास्टर जग जाते हैं और छड़ी लेकर लड़कों को पीटने लगते हैं।

एक कस्बे में देखा––टिन से घेरकर उसी को छत के नीचे सिनेमा चल रहा है। दो शराबियों में मारपीट होने लगती है।

पिक्चर में हीरो अपने दुष्मन से मार पीट कर रहा था। उसी उत्साह में दोनों शराबी बिल्कुल पिक्चर हाल में गाली गलौज करते हुए छुरा निकाल कर लड़ने लगते हैं। पुलिस आकर उन्हें पकड़ ले जाती है। शहर में देखा और धूल भरी सड़क पर स्कूल–कालेज के लड़के देवानंद, मनोज कुमार, शत्रुघ्न सिन्हा और राजेश खन्ना बने सड़कों पर घूम रहे हैं। गांवो की गरीबी, पिछड़ापन, कस्बों में शहर की जिन्दगी की नकल और छोटे शहरों में मनुष्यों की तरह भूख और महत्वाकांक्षायें उन्हें अचरज में डाल देती थीं।

वे दोनों जीवन में पहली बार उस यात्रा में अपने को भूलकर दूसरों के बारे में सोचने के लिए विवश हो रहे थे। उन्हें अपने अपने दुख भूल गये थे। वे उन सब से अपनी तुलना करके हंस पड़ते थे।

जिस दिन दोनों दिल्ली में अपने अपने घर पहुंचे, उस दिन उन्हें अपने घरों के लोगों की अजीब हालत देखने को मिलीं। वे दोनों अचरज में पड़ गये।

अरविंद की मां ने उसके घर से भागने के दिन से अपना खाना सोना हराम कर रखा था। अपने बेटे को वापस पाकर उसने घर में पूजा पाठ करना शुरू किया और जितनी सारी मनौतियां मान रखी थीं, उन्हें पूरा करने में लग गयीं। दिल्ली के आधुनिक जिवन और उन सरकारी क्वाटरों के साथ उन पूजा पाठों की असंगतियों से अरविंद को बस हसीं आती थी।

उधर श्याम के घर उसके मम्मी–डैडी बेहद धबड़ायें हुए थे और बेतरह चिंतिंत और परेशान थे। इसलिये नही कि उनका इस तरह अवारागर्दी कर रहा था, वरन इसलिये कि उसने अरविंद को अपने घर का एक खतरनाक रहस्य बता दिया था।

डैडी, प्रेम भाटिया और मम्मी ने उसे एकांत कमरे में ले जाकर पूछा कि क्या यह सही है कि तुमने अरविंद को नोट छापने की चीज दिखा दी है ? उन्हें इसकी खबर शिमला से उनके नौकर बीबीसिंह ने दी थी।

श्याम ने सब कुछ सही सही बता दिया और यह भी कहा की अरविंद इस रहस्य को किसी से भी नहीं बता सकता। वह ऐसा पक्का दोस्त है जो कभी भी धोखा नही दे सकता। इस बात पर डैडी और श्याम में गरमागरम बातें हुई और बड़ी देर तक खूब बहस हुई अंत में श्याम ने कहा, 'हम लोग आप लोगों से बिल्कुल अलग हैं––और ही तरह के हैं। हम आप लोगों की तरह लालची और स्वार्थी नहीं हैं। जो काम आप लोग करते हैं, हम नही कर सकते' हम उनकी कल्पना तक नहीं कर सकते।

श्याम की इस बात से मम्मी डैडी को कुछ तसल्ली हुई पर उन्होने यह बेहतर समझा कि अरविंद के माता–पिता को अपने विश्वास में कर लिया जाये। उन्हें इस बात का जरा भी विश्वास न हुआ कि अरविंद उस रहस्य को अपने मां–बाप से नहीं करेगा।

सो हुआ यह कि जिस दिन अरविंद और श्याम एक साथ कंही बाहर गये, उस दिन श्याम के डैडी चुपचाप सुबह ही सुबह अरविंद के घर पहुंचे। चारो ओर से कमरा बंद कर लिया गया और प्रेम भाटिया ने वह सारा रहस्य बताना शुरू किया और झट–पट बताकर हजारों रूपयों से भरी एक थैली उनके सामने रख दी :

'देखिये, घर की बात है, घर ही में रह जानी चाहिये।'
'भटिया साहब, आप ये कैसी बातें कर रहें है।'
'जी हां ऐसे ही होता है !'
'आप होश हवाश में तो है।'
भाटिया साहब ने दुबारा कहा, 'मैं हमेशा आपका यहसान–मंद रहूंगा आज यह इतनी रकम लीजिये, बाद में और भी दुंगा।'

राजूदा (राजेन्द्र प्रसाद) के सामने रूपयों की गड्डियां फैला दी प्रेम भटिया साहब ने। राजूदा पसीने से तर होने लगे। झुंझलाकर उन्होंने कहा, 'आप मुझे खरीदने आये हैं अपने इस काले धन से आखिर आप मुझे समझते क्या हैं ? मेरे लिये मेरा धन––मेरा ईमान है––चरित्र है।'

प्रेम भाटिया ने बेहद ठंडे स्वर में कहा, 'आपके उसी ईमान और चरित्र से तो मुझे डर लगता है।'

'मतलब ?'

'मतलब यह कि आप यह राज पुलिस को दे सकते है।'

राजूदा सन्न रह गया––भाटिया साहब कितने गहरे इन्सान है––कितने दूर–दूर तक उनका दिमाग दौड़ता है। तभी उनके कानों में प्रेम भाटिया की आवाज टकरायी, 'राजेन्द्र प्रसाद जी, कान खोलकर सुन लीजिये, अगर कहीं आपने ज़बान खोली तो आप को जिन्दा ही उठवाकर ...।'

दांत पीसते हुए प्रेम भाटिया साहब कमरा खोलकर बाहर अपनी कार में बैठ गये। दौड़ती हुई कमरे में अरविंद की मां–उमा आयीं। उस तरह रूपयों की गड्डियों के सामने अपने पति को चुप चाप बैठे देखकर वह बेतरह घबड़ा गयीं। उमा को कुछ भी बता पाना राजूदा के लिये असंभव था। उनके मुंह से शब्द ही नहीं फूट रहे थे।

एकाएक वह रूपयों की गड्डियों को उसी थैली में भरकर कमरें से बाहर भागे और कार में भाटिया जी को वापस देते हुए बोले, 'ठीक है, मै इस राज को किसी को नहीं बताऊंगा, पर यह धन मुझे नहीं चाहिये। मगर आज से आपके घर से अब कोई रिश्ता नहीं रहेगा।'

भाटिया जी हंस पड़े और तेजी से उनकी कार चल गयी।

भीतर जाकर अपनी पत्नी उमा को जब राजूदा ने सारी बात बता दी जो उमा ने कहा, 'तो उतने ढेर से सारे रूपये क्यों वापस कर दिये ? उन्हें निश्चय ही रख लेना था। सारी जिन्दगी भर आप उतने रूपये नहीं कमा सकते।'

'क्या बकती हो तुम ?'

'मै सही कहती हूं इस तरह घर में आया हूआ धन क्या कोई इस तरह लौटा सकता है ! देखते नही, हमें रूपयों की कितनी जरूरत है ...।'

'तो जाकर डाका मारो कहीं, या तुम भी जाकर उसी तरह जाली नोट छापो। मुझे बेहद अफसोस है कि तुम्हारे विचार इतने गंदे है।'

उमा ने अत्यन्त ठंडे स्वर में कहा, 'दिन रात रूपयों की तंगी में धुटन से कहीं ज्यादा बेहतर है इस तरह आया हुआ धन खुशी से एक बार कबुल कर लेना।'

राजूदा ने उतने ही दुख भरे शब्दों में कहा, 'इससे बेहतर है आत्महत्या कर लेना।'

यह कहकर वह कहीं घर से बाहर चले गये। दोपहर को अरविंद घर लौटा। मां ने उससे बातें की। अरविंद ने बिल्कुल साफ मन से सारी बातें बता दी। पर रूपये ले लेने की बात से वह मां से कतई सहमत न हो सका।

तब स्कूल में दशहरे की छुट्टियां हो गयी थीं। स्कूल खुलने से एक दिन पहले अरविंद के घर मनचंदा मास्टर साहब जी पधारे। उन्होने अरविंद के मां–बाप से ही अरविंद के प्रति अपने के लिये माफी नहीं मांगी, बल्कि अरविंद से भी क्षमा चाही। अरविंद बड़ा हैरान हुआ मास्टर साहब के इस नये व्यवहार से। और दूसरे ही क्षण उसे इस नये व्यवहार का पता चला। श्याम भाटिया ने मनचंदा साहब के 'ट्युशन' को अपने यहां से खत्म कर दिया था। वह अरविंद के पिता जी से इसी बात के लिये सिफारिश करवाने आये थे कि श्याम उन्हे फिर से रख ले। कमाल है !

अरविंद ने स्पष्ट कहा, 'वह इस मामले में कुछ भी कहने और करने में असमर्थ हैं।

मास्टर साहब चले गये। पर अरविंद का दुख और भी ज्यादा बढ़ गया। वह कैसे कैसे लोगों के बीच इस तरह अकेले खड़ा हुआ है। पर नहीं, वह अकेला कहां है––श्याम भी तो उसके साथ है। और उसकी बहन मुक्ता ? उसकी याद आते ही अरविंद के चहरे पर मुस्कान फैल गयी। मुक्ता ठीक उससे विपरीत है। लक्ष्मीबाई नगर के उन सारे सरकारी क्वाटर्स में वह सब को प्रिय है। न जाने कितनी सखियां है उसकी। वह जरा भी नहीं सोचती, उसके पास जैसे इन बातों के लिये एक मिनट का वक्त नहीं है। उसे तो बस जिवन चाहिये––जैसा भी हो। तभी मुक्ता दोड़ती हुई उस कमरे में आई और न जाने क्या तेजी से जाने लगी।

'मुक्ता, सुन, कहां जा रही है ?'

'हमारे ब्लाक के चौकीदार की लड़की की आज साल गिरह है।

'अरे सुनो तो, अगले महीने तीन नवम्बर को श्याम भाटिया की 'बर्थडे' है। कैसे चलेंगे इस बार ?'

'क्यों ? क्या हुआ ?'

श्रीमान पिताजी और श्रीमती माता जी श्याम भाटिया के मम्मी पापा से कुट्टी कर ली है, और हमें सख्त आर्डर है कि हम उनके घर न जाये वरना हमारे पैर काट दिये जायेंगे . . .'

यह बात अरविंद ने बिल्कुल शाही फरमान के अंदाज में कहीं। दोनों को हंसी आ गयी। मुक्ता हंसती हुई चली गयी। उसे इस बात के जानने में कतई कोई रूचि नहीं थी कि यह कुट्टी आखिर क्यों हुई।

दशहरे की छुट्टी के बाद श्याम अरविंद स्कूल की पढ़ाई में लग गये। उन्हीं दिनो पिछले महीने 'क्लासटेस्ट' का नतिजा सामने आया––दोनो कमिस्ट्री में फेल थे। श्याम ने कहा, 'हमें इस बेइमान टीचर मनचंदा को सबक सिखाना होगा। या तो हम इसकी पिटाई करें, नहीं तो इसके खिलाफ स्कूल में स्ट्राइक' अरविंद इन दोनों प्रस्तावों के पक्ष में नहीं था। उसने कहा, 'हम नवम्बर का 'टेस्ट' देकर और देखलें, फिर आगे सोचेगें।

तीन नवम्बर को श्याम भाटिया की साल गिरह में शरीक होने के लिये अरविंद के घर निमंत्रण आया। अरविंद और मुक्ता उसके यहां जाने के लिये आग्रह करने लगे। माता–पिता दोनों इसके सख्त खिलाफ थे। अरविंद का कहना था––श्याम उसका दोस्त है, उसे उसके यहां जरूर जाना चाहिये। यह बिल्कुल बच्चों में अपनी निजी रिश्तों की बातें हैं, इनमें इस तरह बड़ों के टांग अड़ाने की क्या जरूरत मुक्ता भी अरविंद के साथ थी। उसने मां से कहा, 'मां, आप बड़ो की आपस में कुट्टी होगी, हमारी तो कुट्टी नहीं है !'

मां ने मुक्ता को पीट दिया। पिताजी ने अरविंद को बेतरह डांटा। पर इसका नतीजा हुआ बिल्कुल उल्टा। दोनों बच्चे छिपकर चले गये श्याम के घर। और रात को आठ बजे जब दोनों घर लौटे, तो देखा पिता जी बेंत लिये दरवाजे के भीतर खड़े हैं। अरविंद को जरा भी डर न लगा। वह पिताजी के सामने जा खड़ा हुआ और बेंत की मार सहने लगा। लेकिन उन्होंने जैसे ही मुक्ता पर बेंत चलाना चाहा, अरविंद ने बढ़कर पिताजी का हाथ पकड़ लिया, 'आप मुक्ता को नहीं मार सकते। मुझे पीटिये, मैं ले गया था उसे अपने संग।'

'ये बच्चे नहीं पागल हैं। अरविंद हम भी तो बच्चे थे।'

पिताजी यह कहते जा रहे थे और अरविंद को पीटते जा रहे थे। मुक्ता ने चीखकर पिताजी को हाथ पकड़ना चाहा, पिताजी ने उसे धक्का दिया, वह फर्श पर गिरी और उसके कटे ओठों से खून गिरने लगे। पिताजी का रूक गया पर माताजी का गुस्सा शांत नहीं हुआ। उनका गुस्सा कहीं पिताजी पर भी था––कहीं अपने ऊपर भी।

रात को सोने से पहले एकाएक अरविंद और मुक्ता के कमरे में उन की हंसी सुनायी दी। वे दोनों हंस हंस कर बातें करते थे पिताजी उनके कमरे के बाहर खड़े होकर सुनने लगे।

'वेशर्म कहीं के, अब भी हंसी आती है ?'

अरविंद ने कहा, 'पिताजी, आप प्रतिक्रिया में जीते हैं हम क्रिया में––छोट मुंह बड़ी बात न समझिये।'

'पिताजी झल्ला पड़े, 'चुप, जबान लड़ता है।'

मुक्ता बोली, 'पिताजी, आपने तो हमें सजा दे दी, अभी कुछ और बाकी है क्या ?'

'बेशर्म हो तुम लोग।'

अरविंद कह रहा था––'ये लोग क्यों चाहते हैं, 'हम भी इन्हीं की तरह सोचें, इन्हीं की तरह सब काम करें . . . .।'

राजूदा वापस अपने कमरे में चले गये।

लेकिन इस घटना ने उस घर परिवार में एक नये अनुभव की शुरूआत दी। माँ–बाप को लगता–वे अपने दानों बच्चों को कतई नहीं समझ पा रहे हैं। ना उन्हें बच्चों की बाते समझ में आ रहीं हैं, नाहीं वे अपनीं बातें बच्चों को समझा पा रहे हैं।

अजब सा सन्नाटा, बेतरह की किचकिचाहट उस घर में। चारों तरफ जैसे अपरिचय, अजनवीपन की एक वेशक्ल तस्वीर घर की हवा में लटक गयी।

राजूदा ने सोचा, सपरिवार कहीं बाहर जाकर छुट्टी बिताई जाय। वातावरण और स्थान के परिवर्तन से निश्चय ही लाभ होगा। बच्चों का ध्यान बंट जायेगा और सबके मन शान्त हो जायेंगे।

इसी बीच बड़े दिन की छुट्टियां आ गयीं, माता–पिता, दोनों बच्चों के संग बड़े दिन की छुट्टियों में अपने गांव चले गये। जिला फैजाबाद, तहसील टांडा गांव दुल्हेपुर। करीब तीन साल पहले इसी तरह अरविंद और मुक्ता अपने इसी गांव आये थे। तब यह गांव उन्हे तरह तरह के किस्से कहानियों से भरा हुआ लगा था। गांव के लोग तब बताते थे––उस पीपल के पेड़ पर एक देवता रहता है। उस बबूल के पेड़ पर एक बह्मराक्षस रहता है। उस बरगद के पेड़ पर एक ओर एक देवता रहता है, दूसरी एक भूत रहता है। दोनों की लड़ाइयों के किस्से लोग बताते थे। गांव से थोड़ी दूर जो रतसोनी नदि बहती है––उसके बारे में भी तरह तरह के किस्से लोग बताते थे। बड़े ताऊजी जो गांव में खेती करते हैं, उन्होंने तब बहुत सारी कहानियां बताई थीं।

पर इस वार गांव आकर अरविंद को जरा भी विश्वास न रहा। अब उसे सारे पेड़ केवल पेड़ लगते, और गांव के लोगों की बातें केवल कोरी गप्प लगतीं। इस बार उसे गांव जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। पिताजी को सुबह शाम गांव के लोग घेरकर सिर्फ नौकरी की बातें करते और दूसरों की बुराई। माता जी गांव की औरतों पर अपना शहरी रौब जमाती हुई दिखतीं। गांव के लड़के–लड़कियाँ दोनां भाई बहनों को अजनबी नजरों से देखते।

शुक्रवार और सोमवार के दिन गांव में हरदेवा का बाजार लगता। एक दिन अरविंद पैजामा कुर्ता पहनकर अपने ताऊ जी के साथ हरदेवा बाजार गया। बाजार में उसने देखा गांव के पढ़े लिखे नवयुवक पैंट पहने हीरो बने घूम रहे हैं। बाजार में एक ओर कुछ बेहद गरीब लोग घूम रहे, कुछ दुकानों पर उदास बैठे हैं। और कुछ अमीर धनी लोग बड़ी बड़ी बातें कर रहे हैं। बाजार से गांव––पर लौटते हुए ताऊजी ने फिर वही बताना शुरू किया––हरदेवा का यह बाजार शंकर भगवान का लगवाया हुआ था। हुआ एक बार ऐसा कि पार्वती जी ने शंकर से कहा कि हे बम–भोला, मुझे कुछ गहने बनवा दो। मेले में पहनकर जाऊँगी। शंकर जी ने कहा––औरत की जात को तो बस गहनों के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। पार्वती जी रूठकर नैहर चली गयीं। शंकर जी ने कहा––मैं नहीं जाऊँगा उसे बुलाने। वहीं रहें। कई साल बीत गये। मनमोटाव बढ़ता गया। बढ़ता गया। पार्वती जी परेशान। फिर उन्होंने मालिन का रूप धारण किया। बेल–पत्र, धंतूर के पुष्प टोकरी में भरे हुए मालिन आयी गांव गांव बेचने। ओ मालिन, क्या दाम ? खरीदना है तो सुनो, ओ जो शंकर जी हैं न, उनके गले का सांप है इसका दाम। सब लोग परेशान। कोई खरीदने वाला नहीं। बात राजा तक पहुंची। राजा शंकर जी के पास गये। मालिन की बात बतायी। शंकर ने कहा––बुलाओ उसे, मैं खुद खरीद लूंगा––मुझे धतूरा काफी दिनों से खाने को नहीं मिला है। पर वह मालिन नहीं आयी। जिसको माल लेना है, वह खुद आये मेरे पास।

शंकर जी ने नन्दी की पीठ पर बैठ कर गये मालिन के पास। वह एक सुनसान मैदान में अकेली बैठी लाल लाल फुलों की माला गूँथ रही थी। शंकर ने कहा––ऐ मालिन, बेंच दे अपना सारा माल। क्या दाम लोगी ? तुम्हारे बदन के सारे सांप। ले लो, यह तो बड़ी अच्छी बात है। शंकर ने अपने सारे सांप उसकी खाली टोकरी में डाल दिये और फूल पत्र लेकर चलने लगे। मालिन ने उन सांपो को गहने के रूप में अपने अंग अंग पर सजा लिये। फिर तो मालिन के रूप के क्या कहने। सारी दिशाये जगमगा उठीं। शंकर भगवान उस मालिन के रूप पर लट्टू हो गये। चलने लगे, उसके पीछे पीछे। इसी जगह पर आकर पार्वती जी को हंसी आ गयी। तभी से यहां यह बाजार लगने लगा––हरदेव नाथ का बाजार।

अरविंद को ताऊजी के मुंह से यह कथा सुनकर मजा आ गया। शाम को काफी लोग दरवाजे आ बैठे थे। तरह तरह की गांव शहर की बांते चल रही थीं।

अरविंद ने कहा, 'गांव के लोग किस्से कहानियां खूब जानते है।'

मुक्ता ने कहा, 'शहर के लोगों की कल्पना ही मर जाती है।'

अरविंद ने डांट दिया, 'हअं झूठ मूठ की कहानियों से कल्पना का क्या संबंध ?'

अरविंद की इसी बात से वहां बातें बढ़ गयीं। गांव के लोग भूतप्रेत, राक्षस देवता के अस्तित्व को सिद्ध कर रहे थे। अरविद अकेला सब के तर्कों के विरोध में खड़ा था। उसने कहा, 'मैंने एक किताब में पढ़ा है––देवता राक्षस कैसे, कहां से पैदा होते हैं। ये दरसल मनुष्य के दिमाग की उपज हैं। आदमी लोग बहुत सी चीजें चाहते हैं। जब उनकी इच्छायें पूरी नहीं होतीं तो उस शुन्य को भरने के लिये या तो देवता आ जाते हैं या राक्षस पैदा हो जाते हैं। अधूरी इच्छाओं से पीड़ित

होने पर जीवन से या तो घृणा पैदा हो जाती है या तो उदासी। यहीं से भूत–प्रेत, राक्षस देवता इंसान के दिमाग में पैदा होते हैं।

अरविंद की ये बातें सुनकर गांव के बड़े बूढ़े हंस पड़े। पर उसके ताऊजी और पिताजी गंभीर हो गये। ताऊ जी बोले, 'आजकल के लड़के किस तरह सोचते हैं, कमाल है।' पिता जी ने कहा, 'इन लड़कों को किसी भी चीज पर विश्वास नहीं।'

एक हफ्ते बाद माता पिता के साथ वे दोनों विदा लेने लगे। गांव के बाहर लोग उन्हें विदा देने आये। पिता जी ने कहा, 'अरविंद, चलो ताऊजी और चाचा काका लोगों के पांव छुओ, चलो।'

पर अरविंद खड़ा रहा। उसने लोगों से हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पिता जी को बहुत लगा। पर वह मुंह देखते रह गये। बढ़कर उन्होंने अपने से बड़े के पांव छुए अपने से छोटों के गले मिले और सबसे विदा लेते हुए वह रो पड़े।

अरविंद और मुक्ता पिता जी को देखते रह गये। राह चलते हुए पिताजी रूमाल से अपनी आंखे सुखाते जा रहे थे। वह आंख उठा उठाकर उन पेड़ो, उन जगहों को देख रहे थे। जिनसे उनके जीवन का, बचपन से लेकर आजतक का संबंध था।

गांव से चलकर सब लोगों की यात्रा जैसे जैसे आगे बढ़ती गयी––दूल्हेपुर गांव से टांडा कस्बा, अकबरपुर स्टेशन से फैजा बाद और फैजाबाद से इलाहाबाद––इस पूरी यात्रा को याद करते हुए पिता जी बार बार उन सारी स्मृतियों को बताते थे, जो अमुक अमुक जगहों पर घटी थीं। कहीं कहीं माता जी भी अपनी यादों को ताजा कर लेती थीं। पर उनकी स्मृतियों, यादों से न कोई खास दिल्चस्पी अरविंद को थी न मुक्ता को।

इलाहाबाद की रेल यात्रा में अरविंद से न रहा गया। उसने पूछा, 'यह लगाव––'अटैचमेन्ट' क्या होता है ?'

पिताजी ने कहा, 'यह वही जान सकता है, जिसके पास भावना है––'फीलिंग' हैं।'

अरविंद के मुंह से निकला, 'पर यही भवना क्या राक्षस देवता को नही जन्म देती ?'

राजूदा ने स्नेह से कहा, 'बेटे, ऐसे अनाप शनाप नहीं सोचा करते।'

'जी हां, मेरे पास भावना नहीं है, तभी ऐसा सोचता हूं और आप लोगों के पास भावना है, तभी आप एक तरफ इतने भावुक हैं कि राते हैं और दुसरी तरफ उनसे नफरत करते हैं जो आप से भिन्न हैं, अलग हैं।'

पिताजी ने कहा, 'चुप रहते हो या नहीं।'

पर अरविंद चुप नहीं हुआ, 'आप चाहते है, मैं भी आपकी तरह बनूं आप ही जैसा सोचूं, आप जिन चीजों को पसंद नहीं करते, उनसे आंख तक नहीं मिलाना चाहते, आप चाहते हैं, मैं भी वैसा ही करूं . . . । पिता जी गुस्से में आ गये, 'तुम लोग बकवास करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकते !'

अरविंद पिताजी का तमतमाया हुआ चेहरा देखता ही रह गया। तभी मुक्ता ने अरविंद के हाथों में एक बंद लिफाफा रख दिया।

जाड़ों के दिन बीत रहे थे। अरविंद ने दिल्ली में हमेशा यह महसूस किया है कि यहां 'विंटर' बहुत देर में आता है, और बीतता बहुत जल्दी है। ठीक इससे उल्टा अनुभव उसका इलाहाबाद का था।

इलाहाबाद में मुक्ता ने जो बंद लिफाफा तब अरविंद के हाथों में दिया था अरविंद और श्याम की छमाही परीक्षा का नतीजा। दोनों बहुत अच्छे अंकों से पास हुए थे। इस नतीजे के रहस्य को दोनों जानते थे। पर इसका फल अच्छा ही हुआ। श्याम को अरविंद के साथ पढ़ने में थोड़ा आनन्द आ गया। दोनों अक्सर एक–दूसरे के घर बैठकर एक संग पढ़ने लगे। यह बात और थी की पढ़ाई कम बातें ज्यादा होती थीं। और बातें भी क्या क्या नहीं––मतलब दुनियां भर की बातें।

मुक्ता भी अक्सर श्याम के घर जाती थी।

जैसे जैसे ठंड कम होने से पहाड़ पर जमी बर्फ पिघलती है, ठीक उसी तरह इन बच्चों की वजह से उन दोनों घरों में धीरे धीरे फिर से रिश्ते जुड़े। ऊपर जमे मनमुटाव की बर्फ पिघल गयी। असली पहाड़ को शहर में कौन देखता है।

श्याम की मम्मी श्रीमती ऊषा भाटिया और अरविंद की माताजी श्रीमती उमा प्रसाद में रिश्ता और ज्यादा घना हो गया। उमा अक्सर ऊषा को 'आफीसर्स वाइफ्स क्लब अपने साथ ले जाती और ऊषा अक्सर उमा को मार्केटिंग कराने, क्लव धुमाने ले जाती और ऊषा की यह कोशिश रहती कि उमा को यहसानो––भेटों से इतना खुश रखा जाय कि उनका कभी भी मुंह न खुले।

प्रसाद और भाटिया साहब में भी खुब छनने लगी। दोनों अक्सर यह बात कहने को मजबूर हो जाते कि, देखो जी, हमसे ज्यादा समझदार हमारे बच्चे हैं। जो भी हो, ये बच्चे है बड़े साफसुथरे। इनमें ने मोहमाया है ना लल्लो चप्पो। हम जब इनकी उमर में थे तो हमारी बात ही और थी। ना हम पर इतना ध्यान रखा गया, ना हमारे बचपन की चिंता की गयी। मगर हमने अपने बच्चों की हर तरह से चिंता की, तभी ये हमसे बिल्कुल अलग तरह के हैं।

ये बातें करते हुए दोनों ही ही करके हंस पड़ते और अपने अपने बचपन की तुलना अपने बच्चों से करते।

'देखिये प्रसाद साहब, हम तो डरते थे अपने बचपन में।'

'अजी पूछिये नहीं मिस्टर भाटिया घर में बड़े बुढ़े लोग और स्कूल में वे मास्टर लोग। राम राम कीजिये। इन्हें वे दिन देखने को मिल जाय तो इनका खून जम जाय।'

'मैं तो समझता हूं, हमसे बेहतर हैं ये नये बच्चे।'

'हां, क्यों नहीं।'

कभी कभी मां बापों की इस मंडली में वे तीनों बच्चे भी मिल बैठते। फिर सवाल जवाब शुरू होते, तर्क बितर्क दिये जाते। बातों ही बातों में लोग लाल पीले हो जाते, पर तीनों बच्चे केवल मजा लेते।

एक दिन दोनों परिवार एक साथ पिकनिक मनाने गये––ओखला, जमुना के तट पर। संध्या समय लोग पहुंचे थे वहां। पुर्णमासी की रात थी। दूर दूर तक रेत चमक रही थी। बच्चे ऊंट और घोड़ो की सवारी का मजा लेने लगे।

अब चांदी जैसी रेत पर रात का खाना खाकर उन्हें घर लौटना था। खाने पीने का सारा इंतजाम मिसेज भाटिया ने ही किया था। संग दो नौकर आये थे।

प्रेम भाटिया ने इशारा किया। नौकर 'ड्रिंक्स' तैयार करने लगा। तभी राजु दादा ने कहा, 'बच्चों, तुम लोग अभी थोड़ा और घूम आओ . . . प्लीज।'

'मगर क्यों, इनके लिये भी तो 'साफ्ट ड्रिंक्स' है।'

मिसेज भाटिया की यह बात सुनकर श्रीमती उमा जी बोली, 'ठीक तो है, बच्चे जैसे कुछ जानते ही नहीं !'

'वह तो ठीक है––ये हमसे ज्यादा जानते हैं, मगर बाप तो इनके हमी रहेंगे !'

प्रसाद साहब का यह मजाक वहां खूब जमा। सब हंस पड़े। पर थोड़ी देर में प्रसाद साहब बड़ी गंभीरता से बोले, जो भी हो, मैं बच्चों की सोहबत में यह सब नहीं पीना चाहता।'

'क्यों, अरे।'

'अपने–अपने संस्कार और दृष्टिकोण . . .।'

श्रीमती उमा प्रसाद से ना रहा गया, 'जैसे बंगले पर बच्चों के सामने पीते ही नहीं। हअं, इतनी पार्टियां होतीं हैं हमारे यहां। इत्ते बड़े बड़े लोग आते है और यह मजाक करने बैठे हैं।'

अरविंद को हंसी आ गयी। पर वह कुछ बोला नहीं।'

बोले फिर वही राजूदा––मतलब प्रसाद साहब, 'भई पहली बात तो यह कि लक्ष्मीबाई नगर का वह हमारा सरकारी मकान बंगला नहीं। दूसरी बात मैंने कभी बच्चों के सामने नहीं पी। बुरा समझता हूं।'

'फिर पीते क्यों हैं ?' मुक्ता बोली और मां के हाथ से एक हल्का सा चपत खाकर चुप रह गयी।

'आज पी ही लीजिये, अंकल।' यह कहते हुए श्याम भाटिया ने प्रसाद साहब के हाथों में गिलास थमा दिया।

सब अपनी–अपनी 'ड्रिंक्स' पीने लगे। तभी प्रेम भाटिया ने कहा, भई, मैं तो जो कुछ करता हूं, बच्चों से कभी कोई पर्दा नहीं रखता।'

'पर्दा ही तो तहजीब है संस्कृति है। आखिर ये वस्त्र क्यों बनायें इन्सान ने ? य मकान–कमरे क्यों बने ? कुछ ढकना कुछ को पर्दे में रखना यही तो सभ्यता है, इंसान और जानवर में फर्क ही क्या ?

प्रसाद साहब की इस बात से भाटिया साहब तो चुप रह गये, पर श्याम बोला, 'अंकलजी, मगर खाने पीने में क्या परदा ?'

'फिर किसी चीज से भी क्यों परदा ?'

प्रसाद साहब अभी बोलते चले गये, 'पश्चिम ने तो सारा परदा हटा दिया। सब कुछ मुक्त कर दिया। पर हुआ क्या इसका नतीजा ?'

यह कहकर उन्होंने अपना शेष गिलास एक ही घूंट में पीकर खाली कर दिया।

थोड़ी देर में बच्चे अपने मम्मी–डैडी, से 'बोर' होकर रेत में दौड़ने लगे। वे बुलाने से भी पास नहीं आ रहे थे।

काफी देर बाद अरविंद की मम्मी उमा ने आवाज लगायी।

'बच्चो, आ जाओ डिनर ठंडा हो रहा है।'

श्रीमती प्रसाद की आवाज सुनकर तीनों बच्चे भागे चले आये 'आप लोग गरम खाइए हम लोग ठंडा ही खायेंगे।'

मिस्टर और मिसेज भाटिया दानों हंस पड़े। दोनों के हाथ में गिलास थे। वे उठकर बच्चों की तरफ चले। मौका पाकर श्रीमती प्रसाद ने पति से दांत पीसते हुए कहा, कर दी न मेरी बेइज्जती। बड़े सत्यावादी बनके आये हैं।'

'अरे, क्या किया मैंने ?'

'मैने तुम्हें कितनी बार समझाया कि इन लोगों ने इतनी तरक्की इसीलिये की,

कि इन्हे कुछ भी करने और कुछ भी झूठ बोलने में जरा भी संकोच या डर नहीं, और ये पूरब के लोग है कि सत्य हरिशचन्द्र बनने का जैसे ठेका ले रखा है।'

'हंअ, क्या तरक्की कर ली इन लोगों ने ? यही तरक्की है ?'

'पर हमें रहना तो ऐसे ही लोगों के साथ हैं। इन्हीं से तो 'कम्पटीशन' है लोगों की।'

'हमारी नहीं ...।'

'ये सब कहने की बाते हैं।'

धीरे धीरे पति पत्नी की बातों में तेजी आने लगी। प्रसाद साहब आज दबने वाले नहीं। वह आज किसी को भी सही सही उत्तर दे सकते हैं। उमा ने जब यह अनुभव किया, फिर वह चुप रह गयी। पर अब प्रसाद साहब क्यों चुप रहें ? ऐसे ही क्षणों पर तो उन्हें खुलकर बोलने की स्थिति मिलती है। उनकी पत्नी उमा ने उन पर कितना कितना अन्याय किया है––यह उनके अलावा और कौन जान सकता भला ? उमा ने उन्हें क्या क्या नहीं बनाना चाहा। कितनी कितनी महत्वकांक्षायें उनमें भरनी चाही है। उनकी मानवीय कमजोरियों का उमा ने फायादा उठाया है। सिर्फ अपने पावों पर खड़े होकर इतनी दूर चलकर आये हैं।

उमा डर गयी कि प्रसाद साहब कहीं यहीं न उबल पड़े। उनके गुस्से को वह जानती है। उन्हें एकदम चुप करने के लिये वह और ड्रिंक्स देने लगी। प्रसाद साहब ने बड़े संयत स्वरों में कहा, 'ज्यादा पीने की जरूरत सिर्फ उन्हें पड़ती है, जिन्हें कुछ भूलना होता है या जिन्हें जिन्दगी की सच्चाई से थोड़ी देर ही सही भागना होता है––डरपोक कायर पापी लागों के लिये है यह ...।'

यह कहकर प्रसाद साहब चुप हो गये। उमा मन ही मन सोचने लगी––जिनकी जिन्दगी में ऐसा कुछ नहीं होता, जो आदर्शों में विश्वास करते हैं, फिर वे क्यों पीते हैं ?

लेकिन तीनों बच्चों के साथ भाटिया लोग हंसते हुए वापस आ रहे थे। सब की हंसी के ठहाके राजूदा के कानों में गूंज गये। उन्होंने धीरे से कहा, 'भाटिया लोग फिर भी इतने खुश रहते है, मगर यह उनका रहना नहीं है, महज दिखाना है। वे अपने गम को भूलने के ही लिये तो इतना सब कुछ करते हैं। दरसल वे लोग अपने को भी दोखा देते है।'

'आप अपनी ख्याली पौलाब पकाते रहिये। भाटिया लोग बिल्कुल खुश रहते हैं––उन्हें किसी चीज का गम नहीं। दुख तो हम जैसों की जिन्दगी में है जिन्हें दिन रात इस बात की चिंता लगी रहती है कि कहीं हमारा असूल, सिद्धान्त तो नही टूटा, कहीं हम अपने आदर्शों से तो नहीं गिरे ? बकवास ...।'

सब आकर बैठ गये। डिनर लगाया जाने लगा। उस फैली चांदनी के नीचे सभी खुशी खुशी खा रहे थे। सिर्फ उदास और गंभीर थे तो वहीं अकेले राजूदा वहीं प्रसाद साहब 'क्या है प्रसाद साहब, बड़े चुप हो।' प्रेम भाटिया ने कहा। 'जी नहीं तो।'

फिर मिसेज भाटिया बोलीं, ' खामखा भाभी ने (श्रीमती उमा) नाराज कर दिया होगा, मुझे बैठने दीजिये इनके साथ, अभी खुश करती हूँ।'

यह कहकर श्रीमती भाटिया बिल्कुल उनसे सटकर बैठ गयीं। उनसे हंस हंस कर न जाने क्या क्या बातें करने लगीं।

जैसे जैसे डिनर खत्म हुआ सचमुच वैसे ही वैसे प्रसाद साहब बिल्कुल प्रसन्न होते गयें। डिनर के बाद मजे से चांदनी में रेत पर घूमने लगे। लेकिन जैसे ही उनकी नजर अपनी पत्नी उमा पर पड़ी, जो भाटिया के साथ उसी तरह टहल रही थी, वह झट लौट आये। बोले, 'अब देर हो रही है। घर लौटना चाहिये।'

'अभी क्यों ?' उमा ने पूछा।

'सुबह बच्चों को स्कूल जाना है––मुझे दफ्तर जाना है।'

'हमें भी तो . . .।'

प्रसाद साहब ने भाटिया साहब की बात काट दी, 'अजी आप कहां, और हम लोग कहां ?'

उमा ने मन ही मन में गुस्से से कहा––हर वक्त यह महज तुलना ही करते रहते हैं।

घर लौटते लौटते रात के ग्यारह बज गये। मुक्ता उन्हीं कपड़ो में पलंग पर जा सोयी। अरविंद टेबुल लैम्प जलाकर चुपचाप पढ़ने लगा। रात के कपड़े पहनकर कमरे में माता जी दाखिल हुईं और मुक्ता को सोते देखकर उबल पड़ी, 'यह क्या बत्तमीजी है। इसे जरा भी शऊर नहीं। पता नहीं इसे कब अक्ल आयेगी।'

यह सब कहती हुई वह मुक्ता को जगाने लगीं। उसे कपड़े बदलने के लिये डाटती रहीं। अरविंद की पढ़ाई में विघ्न पड़ रहा था। उसने कहा, 'मां, जाने भी दो, बेचारी सो गयी है।'

'जैसी अपनी आदतें चौपट कर रखीं है, वैसी ही उसकी बनाना चाहते हो, शरम नहीं आती। यही बने है बड़े भाई।'

मां न जाने क्या क्या, किस–किस का गुस्सा उसी अरविंद पर उतारने लगी। उसी बीच धर की बिजली चली गई। अरविंद कमरे से बाहर निकला। सबके घरों में बिजली है, सिर्फ उसी के घर में बिजली गयी है। वह टार्च लेकर बिजली बनाने चला, तो पिता जी नाराज होने लगे, 'कहीं बिजली लग गयी तो लेने के देने पड़ जायेगें। खबरदार 'स्विच बोर्ड' पर हाथ न लगाना। फोन करके बिजली वालों को बुला लो, खुद हाथ मत लगाओं, हां।'

माता जी बीली, 'और अब इस वक्त बिजली की जरूरत ही क्या है ? जाओ, सो जाओ।'

'मां, मेरा इम्तहान नजदीक है। मुझे पढ़ना ही है।'

'बड़े आयें हैं पढ़ने वाले।'

पिताजी की यह बात अरविंद को छू गयी। उसने गंभीरता से कहा, 'आप लोग हमें कुछ नही करने देते। कहीं हमे बिजली का झटका न लग जाये, ज्यादा पढ़ने से हमारी आंखें खराब न हो जायं, वक्त से ना सोने, न खाने से हमारी तंदुरूस्ती न बिगड़ जाये वगैरह वगैरह––इसलिये आप लोग हमें कुछ नहीं करने देते––मगर दुसरी और आप ही लोग कहते है कि हम लोग किसी लायक नहीं। आप लोग अपने बचपन से हमारे बचपन की तुलना करके हर वक्त हमें छोटा बनाना चाहते हैं . . .।'

'हाय, कितना बोलता है यह।'

'आजकल की यही हवा है।'

माता पिता घर के उस अंधेरे में न जाने क्या क्या बोलते रहे। अरविंद ने मोम्बत्ती जलायी। उसी की रोशनी में वह पढ़ने लगा। मां की फिर आवाज आयी–– 'अरू, सो क्यों नही जाता भइया, क्यों हमारा दिमाग खा रहा है।'

अरविंद सोचने लगा––मां बाप जितना अत्याचार–अन्याय अपने बच्चों पर करते है, उतना कोई दुश्मन भी नहीं करता। उसमे धीरे–धीरे विरोध पूर्ण गुस्सा भरने लगा। जाकर 'स्विच बोर्ड' खोला और 'फ्यिूज' लगाकर बिजली चला दी।

इसी तरह बिजली आजा ने से मां बाप को जरा भी तकलीफ न हुई। वे बहुत खुश हुए होगें––लड़का कितना अच्छा है––'फ्यिूज' लगा लेता है . . .कितना हिम्मती है मेरा बेटा। 'नानसेन्स' अरविंद अपने आप मे ही मुस्करा पड़ा।

घर के सब लोग सो गये। महज अकेला अरविंद बैठा पड़ता रहा। ठीक साढ़े बारह बजे बाहर दरवाजे पर दस्तक हुई।

'कौन ?' पिताजी की आवाज कड़की।

'कौन है ?' माताजी ने बंद दरवाजे के भीतर से रोशनी जलाकर देखा। श्रीमती भाटिया आयीं है––हाथ में एक अटैची लिये।

दरवाजा खुला। सब कमरे में आ गये। श्रीमती भाटिया ने कहा, 'पता चला है, आज ही रात को चार बजे हमारे बंगले पर छापा पड़ने वाला है––पुलिस, एक्साईज इनकमटैक्स वाले मिलकर 'रेड' करने वाले हैं।'

'तो ...?' श्रीमती प्रसाद ने चिंता से पुछा।

'बस, यही अटैची अपने यहां रख लीजिये।'

'इसमें है क्या ?' प्रसाद साहब ने पूछा।

बस, कागजात है और कुछ नहीं।'

'ठीक है, रख दीजिये।'

प्रसाद यह फैसला सुनकर उमा जी सन्न सी रह गयीं। श्रीमती भाटिया 'थैंक्यू' कहकर अपनी कार में बैठ गयीं।

अरविंद के मुंह से निकला, 'पिताजी, आपको पहले देख लेना था कि इस अटैची में दरसल है क्या ...।'

मां बढ़ कर अटैची को देखने लगी, पिताजी ने कहा, 'बिल्कुल नहीं, इस अटैची पर कोई हाथ नहीं लगायेगा। यह अमानती चीज है।'

'अगर उन लोगों ने हमें फंसा दिया तो ?'

'तुमने उनसे इतना मेलजोल किया है––दोस्ती बनाई है तो तुम्हें इसकी कीमती भी चूकानी चाहिये।'

'मां पति का मुंह देखती रह गयी।

अरविंद ने कहा, 'मां, तुम आंटी जी को खुद मना कर सकती थीं। वह इस बात का जरा भी बुरा नहीं मानती।'

अब मां बाप दोनों अरविंद का मुंह देखने लगे। उसने फिर कहा, 'जो भी हो, वे लोग हम से ज्यादा साफ सुथरे है, क्योंकी हिम्मती हैं ...।'

'क्या ?'

'वे लोग जो चाहते हैं, वही कहते है। और जो करते है, बिल्कुल निडर निःसंकोच होकर ...।' यह कहकर अरविंद अपने कमरे में लौट गया। और माता पिता एक दूसरे का मुह देखते रह गये।

4

सचमुच ठीक उसी वक्त भाटिया के बंगले पर छापा पड़ा। बंगले के भीतर एक एक चीज तलाशी गई। कोई खास एसी चीज पुलिस के हाथ नही लगी, जिससे भाटिया लोग किसी संकट में पड़ते।

शाम को वे लोग राजेन्द्र प्रसाद के घर आये। और बेहद शुक्रिया, कृतज्ञता प्रकट करने लगे, अटैची रख लेने की उस मदद से। ये लोग भी उतने ही खुश थे।

पर श्याम कतई खुश नहीं था। वह अरविंद के साथ उसी के कमरे में बैठा बातें कर रहा था। वह कह रहा था कि जो भी हो, डैडी को कभी न कभी पुलिस जरूर पकड़ेगी। इससे तो यही बेहतर होगा, अगर पुलिस के हाथ में वह जल्दी हीं आजायें।

अरविंद ने ताज्जुब से पूछा, 'तुम ऐसा चाहते हों ?'

श्याम सहज ढ़ग से बताने लगा, 'डैडी बड़े चतुर बनते थे,

जैसे कि हर डैडी पिता अपने आप को सबसे ज्यादा चतुर अकल मंद समंझकर चलते है। पहले सोचा था कि अपने काम भर के लिये नोट छाप लेगें, फिर छोड़कर कोई ओर सा धंधा कर लेगें, पर खुद फंस गये अपने ही चक्रव्यूह में। अब इसे कोई बाहर की ही ताकत तोड़ सकती है और तभी मेरे डैडी इससे अलग हो सकते है। इसमे जितनी ही देर होगी, हम सब उतने ही बरबाद होते चले जायेंगे।'

अरविंद घबड़ा गया, 'तब भी तुम्हारे डैडी का क्या होगा ? पुलिस के हाथ में आ गये तो जिंदगी बरबाद हो जायेगी।'

'हो जाये, मुझे क्या ?'

अरविंद उस क्षण अपने मित्र श्याम भाटिया का मुंह देखता ही रह गया। ड्राईंग रूम से उनके माता पिताओं की हंसी, मजाक बोलचाल की आवाजें उस कमरे में आ रहीं थी। जैसे उन सारी आवाजों को मुट्ठी में कसकर श्याम ने कहा, मैने कितनी बार कहा है डैडी मम्मी से इस काम को खत्म कर देने के लिये, पर वे लोग मेरी बात नहीं मानते और इस दुख में मैं अपने आप को वर्बाद करता चला जाउंगा।'

'नही, मैं तुम्हे इस तरह वर्बाद नहीं होने दुंगा।'

'अरविंद, मेरे दोस्त, मै चाहता हूं, एक बार तुम मेरी डैडी से कहो।'

'जरूर . . . मै जरूर कहूंगा।' अरविंद ने कहा।

अगले सप्ताह के सोमवार से ही उनकी वार्षिक परीक्षा शुरू हो रहीं थीं। दोनों के मन नहीं लग रहे थे। श्याम बार बार वही एक ही बात दुहराता रहता––डैडी की इतनी बेशकिमती जिंदगी बस एक ही छोटी सी चीज में फंस कर रह गयी है। शेष सारी दुनिया जिंदगी के अनुभव कैसे हो सकते है ?' इसी अरविंद को सूत्र मिलता, वह भी कहने लगता––बस, वही नौकरी सिर्फ वही नौकरी और उसी के दलदल में ही उसी तरह उसके पिताजी भी फंसे हैं।

अरविंद शनिवार की रात को श्याम के डैडी को मिला। श्याम के सारे दुखो को बताया। अपनी प्रतिक्रिया भी बतायी। पर भाटिया साहब ने उसे गंभीरता से न लिया और हंसते हुए बोले, 'हम बड़ों की दुनियां में बच्चे क्यों इस तरह खामखाह टांग अड़ाते है। हम जब बच्चे थे तो अपने पिता का पूरा नाम तक नहीं जानते थे।

अरविंद बोला, 'आप भी, अंकल, सिर्फ तुलना करके ही अपनी सफाई देते है। पर अब तो तुलना भी बेकार है। सुना है आप लोग अठारह साल तक बच्चे माने जाते थे, मगर हमें तो यह पता भी नही कि हम बच्चे कब थे।'

'क्यों, तुम लोग बच्चे नहीं तो और क्या हो ?' भाटिया साहब ने चौंक कर कहा।

अरविंद ने उत्तर दिया, 'जो नही, होश आते ही हमें बुड्ढा बनाया जाने लगता है। हमें एक बनेबनाये सांचे में ढाला जाने लगता है . . .। और इससे बच्चे–लड़को मे शुन्य पैदा होता है उसमे मां बाप टीचर्स की वे सारी कमजोरियां, सारे अंधकार भर जाते है––क्योंकि दिन रात बच्चों को या तो घरों में रहना होता है या स्कूलों में।'

तभी श्याम वहां आ गया और अरविंद को अपने संग लिये हुए पार्क में घूमने चला गया। श्याम के उस मुख को पहली बार अरविंद ने जैसे अनुभव किया हो।

दोनों चुपचाप पार्क में बैठे थे। चारो तरफ लोग या तो घूम रहे थे या शोर कर रहे थे। फिर भी उस शोर, उस भीड़ में जैसे दोनों बच्चे बिल्कुल अकेले बैठे थे। श्याम ने बड़े दर्द से कहा, 'मेरा अब जी होता है, मैं खुद जाकर पुलिस को बता दूं, पर सिर्फ एक ही डर है––डैडी झट तुम्हारे पिता––राजूदा को फांस लेगें। पहले तो मेरे डैडी को पक्का यकीन होगा कि जरूर यह काम राजूदा ने किया है, फिर अपनी रक्षा के लिए वह ऐसे सरकारी अफसर को इससे जोड़ लेंगे।'

'ऐसा ?'

'हां मनुष्य अपना राक्षस सदा अपने संग रखता है . . .अपनी हिफाजत के लिये। तभी तो बच्चों को सिर्फ राक्षसों और देवताओं की कहानियां सुनायी पढ़ाई जाती हैं––जिनमें हमेशा देवता की विजय होती है––इतना बड़ा झूठ।'

दोनों को हंसी आ गयी। रात को जब दोनों अपने अपने घर पहुंचे तो दोनों की मातायें कुछ पूजापाठ कर रही थीं। उमा खुद देवताओं की मूर्तियां सजाये न जाने क्या भगवान से मांग रहीं थी। उषा उधर एक पंडित के जरिये पूजा में लगी थी। श्याम कुछ नहीं बोला अपने घर में। पर अरविंद जरूर बोला, 'यह क्या चक्कर है मां ?' 'चक्कर ? तू पूजा पाठ को चक्कर कहता है ?

तेरा दिमाग तो सही है न ?' चक्कर इसलिए कि बिना किसी स्वार्थ के तुम लोग कुछ भी नहीं करते।'

'सुनते हो, देखो तुम्हारे पूत जी क्या कह रहे हैं ?

जब तक पिता जी आयें, अरविंद वहां से चला गया था।

सलाना परीक्षा समाप्त हो गयी। श्याम को अरविंद रोज आग्रह करके परींक्षा में बैठने के लिए ले जाता पर वह क्या करके आता, इसकी वह चर्चा ही नहीं करता।

उस दिन सुबह से ही' बेहद गर्मी थी, जिस दिन स्कूल में नवीं क्लास का परीक्षाफल निकला। अरविंद पूरे क्लास में प्रथम आया था और श्याम दूसरे नम्बर पर। श्याम ने उसी वक्त स्कूल में चिल्लाना शुरू कर दिया, 'यह झूठ है, गलत है। मेरा 'रिजल्ट सरासर बेइमानी है। मैंने अपनी कापियों पर एक अक्षर भी नहीं लिखा। मुझे यह परीक्षाफल कैसे मिला ?'

वह अरविंद को साथ लेकर प्रिंसपल साहब के पास गया। स्कूल के सारे विद्यार्थियों में अजब सी जिज्ञासा फैली हुई थी। मनचंदा मास्टर साहब जी बुलाये गये। श्याम की कापियां मंगायी गयीं। श्याम यह देखकर हैरान रह गया कि उसकी कापियां भरी भरी हैं। सारे सवाल किये गये है और उनकी सही 'मार्किंक' हुई है।

कमाल है, यह किसने ऐसा किया ?

मास्टर मनचंदा ने ?

श्याम लिखावट देखने लगा। यह लिखावट अरविंद की भी नहीं है। श्याम की ही लिखावट से मिल रही है। श्याम ने अपनी दोस्ती की कसम रखकर अरविंद से पूछा', 'कसम खाओ, तुमने मेरी तरफ से नहीं लिखा है ?'

'हां, मैंने ही लिखा है ?'

'ऐसा क्यों किया ?'

'मुझे खुद पता नहीं।'

श्याम अरविंद का हाथ पकड़ आफिस से बाहर आया और कुछ क्षणों बाद, 'मैं आगे पढ़ना नहीं चाहता। इसी लिये परीक्षा में जान बूझकर एक शब्द भी नहीं लिखा। क्या रखा है इस पढ़ाई में ? क्या है इसे पास कर लेने में ? जहां ऐसे टीचर हों, जहां ऐसे मां बाप हों, वहां न हमारी पढ़ाई लिखाई का कोई मतलब है न पास फेल को अर्थ।'

'फिर क्या करना चाहते हो ?' अरविंद ने पूछा।

'यही जानना कि मै क्या चाहता हूं।'

'तुम कुछ ऊंची बातें कर रहे हो ?' अरविंद ने व्यंग किया।

और यह कहकर श्याम ठहाका मारकर हंस पड़ा। अरविंद उसकी ऐसी हंसी से भयभीत हो जाता है। दोनों कनाटप्लेस की ओर चल पड़े। टैक्सी बैठते हुए श्याम ने कहा, 'जब से मैंने अपने डैडी को जाना है, मनचंदा को जाना है, कुछ–कुछ अपने को, तुम्हें जाना है, तब से मेरी एक इच्छा है कि मैं औरों को भी जानूं––बिल्कुल सही सही अपने ही अनुभवों से।'

'यही इच्छा तो मेरी है !' अरविंद ने कहा।

'तभी तो हम इतने दोस्त है।'

कनाटप्लेस पहुंचकर एक जगह दोनों ने टैक्सी छोड़ दी। श्याम ने मुस्कराते हुए कहा, 'मुझे लगता है सब चोर हैं, मेरी इच्छा होती है––मैं किसी एक ऐसे आदमी को ढूंढ़ निकालू जो चोर नहीं है।

दोनों कह कहा मारकर हंसने लगे। अरविंद बोला, मैं अक्सर पानी का, अथाह जलका, समुद्रे का सपना देखता हूं। एक बार बहुत ही बचपन में सपना देखा––एक आदमी है जिसके दोनों हाथों में पंख उगे है––वह एक ऊंचे पहाड़ से समुद्र में छलांग मारता है––गोताखोर की तरह समुन्द्र के अथाह जल में डूब जाता है––बड़ी देर बाद बाहर निकलता है––कभी हाथों में मोती लिये हुए, कभी मछली कभी घोघा, कभी खाली हाथ। और कभी समुन्द्र के भीतर से महज एक पुरूष लिये। काश कभी मेरी भेट उसी गोताखोर से हो जाय––पंखवाला गोताखोर।'

इस तरह वे दोनों एक रेस्तरां में चाय पीते हुए न जाने क्या–क्या संभव असंभव बातें करते रहे ! वे उन तमाम बच्चों और लड़कों को याद करते रहे जिन्हें उन दोनों ने, एक बार शिमला में पैदल चलकर पंजाब हरियाना में घूम घूमकर देखा था। दुनियां के सारे बच्चे समान हैं––क्योंकि वे सदा असंभव सोचते है। उन सारे असंभवो को अगर एक बार मिलाकर सबके सामने रख दिया जाय तो पता चले कि मनुष्य को अभी कितना लंबा सफर तै करना है।

मई के अंत दिल्ली बेहद गर्म हो गयी थी। श्रीमती ऊषा भाटिया और उमा प्रासद ने कार्यक्रम बनाया शिमला जाने के लिये। दोनों परिवारों के लोग कार से जाने के लिये तैयार हुए। पर श्याम और अरविंद ने कहा, 'वे लोग पैदल 'हाइकिंग' करते हुए शिमला पहुंचेगें।

आजकल के बच्चे किस कद तबीयत के हो रहे हैं।

सब मनमानी करते हैं।

हवा ही उल्टी बह रही है।

ये कुछ भी खा पी सकते हैं।

सब सत्यानाश .....

इस तरह की तमाम बातें करते हुए दोनों परिवार शिमला पहुंच गये। राजेन्द्र प्रसाद का परिवार उसी कॉटेज में टिकाया गया, जहां उसबार अरविंद और श्याम रूके थे। स्वयं भाटिया परिवार उस दो मंजिले परिवार में रूका, जिसके 'अंडर ग्राउन्ड' कमरे में जाली नोट छपते थे। उमा और प्रसाद साहब ने कई बार जिज्ञासा प्रकट की वह छपाई देखने के लिए, पर, भाटिया ने बराबर झूठ का सहारा लिया। उन्होंने बताया––वह काम एक पहाड़ी के नीचे घने जंगल में होता है––जहां उनका जाना संभव नहीं है।

आठवें दिन, नहीं नहीं ठीक तेरहवें दिन श्याम और अरविंद वहां पहुंचे। वहां उनकी बहुत कम बातें, मिलना–जुलना अपने माता पिताओं से होता। वे दोनो जैसे अपनी ही दुनिया में रहते।

एक दिन सब लोग सिनेमा देखने गये। श्याम और अरविंद वहां अकेले रह गये थे। श्याम उसे अपने संग लिये हुए दो मंजिले मकान में गया। वहां उसे एक दिचस्प चीज दिखायी। बिजली का एक अजीब सा तार उस अंडर ग्राउंन्ड कमरे से ऊपर डैडी के कमरे में लगा हुआ था। उसी के साथ एक टेलीफोन लाइन भी ऊपर से नीचे दौड़ रही थी। श्याम ने बताया––'देखो, मेरे डैडी कितने होशियार हैं। इसी टेलीफोन से वह नीचे बातें करते हैं। और बिजली का तार जानते हो क्या है ? यह तार ऐसा है, जिसका बटन किसी संकट के समय ऊपर से दबाते ही नीचे आग लगा सकता है। अंडर ग्राउन्ड कमरे में ऐसी आग लेगेगी कि वहां की सारी चीजे जलकर खाक स्याह हो जायेंगी। पुलिस के हाथ कुछ भी नहीं लग सकता। डैडी बेदाग बच निकलेंगे।'

अरविंद घबड़ाकर बोला, 'इतना खतरनाक काम डैडी क्यों करते है ?'

'क्योंकि उन्हें और कुछ करने को जो नहीं है।'

अरविंद श्याम का मुंह निहारता रह गया। श्याम ने कहा, 'मेरा जी होता है, मैं स्वयं किसी दिन चुपचाप इस तार का बटन दबा दूं और सब कुछ जल कर भस्म हो जाये, पर .....।'

'यह सब कितना खतरनाक है !' अरविंद ने कहा।

'यही है डैडी का राक्षस, इसे खत्म करने के लिये मुझे भी एक राक्षस की जरूरत है। जिस दिन वह मुझे मिल जायेगा, मजा आ जायेगा।'

'कहां मिलते हैं राक्षस ?'

'मिलते नहीं, भीतर पैदा किये जाते हैं।'

'कैसे ?'

'अपनी अपनी इच्छाओं से !'

'पर कैसे ?'

'जैसे तुम्हारे भीतर सपने में वह गोताखोर पैदा होता है।'

'तो अपने भीतर हम देवता क्यों न पैदा करें ?' अरविंद ने कहा।

'देवता और रक्षस दोनों में कोई अंतर नहीं ! अंतर सिर्फ यह है कि राक्षस एक सच्चाई का नाम है––एक ताकत का नाम और देवता उसी का दूसरा रूप है–– जिसे लोग आदर्श कहते है।'

'तुम, श्याम, इतनी बातें कैसे सोच लेते हो ?'

'लगता है, मेरे भीतर कोई एक राक्षस राक्षस पैदा हो रहा है। मतलब, मैं पैदा कर रहा हूं !'

'कैसे ?'

'सोचने से।'

'तो हम अच्छी चीज क्यों नहीं सोचते ?'

'यहां अच्छा बुरा कुछ नहीं है। सब कुछ एक ही है––देवता और राक्षस।'

इस तरह दोनों अनाप शनाप बातें करते रहे। रात को घर के लोग सिनेमा देखकर वापस आये। बड़े खुश थे। पिक्चर रहस्य, रोमांच, और मारधाड़ की थी। वे लोग डिनर टेबुल पर बातें करते हुए श्याम और अरविंद को भी उन्हीं बातों में बांध लेना चाहते थे। मगर ये दोनों अजीब तरह से मुंह बानाये बैठे थे। खाना तो जैसे खा ही नहीं रहे थे। राजूदा ने मजाक किया, 'क्या बुड्ढों जैसा मुंह बनाये बैठे हो ?'

मम्मी ने जोड़ दिया, 'आजकल के लड़को के हाल ने पूछिये, ये कब क्या हो जाते हैं, भगवान ही जाने !

माताजी ने कहा, 'पिक्चर अंग्रेजी थी, पर यहां के लड़कों पर भी लागू होती थी।'

अरविंद की जिज्ञासा भड़क उठी।

'अच्छा, क्या था पिक्चर में ?'

राजूदा बताने लगे। अपनी आदत के मुताबिक पहले छोटा सा भाषण, फिर असली बात। कहने लगे,।'

'पश्चिमी देशों में अब तक जवान लड़के ही खुले आम दिन दहाड़े मारपीट, लूटपाट, डाकेजनी, कत्लखून करके मौज लेते थे, मगर अब वे जमाने से पीछे रह गये। अब वहां नयी लड़कियां सामने आ गयीं।'

'क्या ?' श्याम को भी जिज्ञासा हुई।

राजूदा हंसकर बोले , 'अब पश्चिम में लड़कियां दादागीरी करने लगी हैं। सिनेमा में यही था––लड़कियां इधर–उधर पहले से प्रोग्राम के मुताबिक आपस में एकाएक मारपीट करने लगती हैं।'

मुक्त बोली, 'पर ये लड़कियां लड़कों की तरह लूटपाट या डाका नहीं डालतीं। जान से मारती भी नहीं। बस ऐसा ये स्कूल कालेज, दफ्तर और घर की जिन्दगी का बोर्डम तोड़ने के लिए ऐसा करती हैं।'

सहसा श्याम बोला, 'अब बताइए हम लोग यहां अपनी बोर्डम तोड़ने के लिये क्या करें ?'

'जैसे तुम लोग कुछ करते ही नहीं।' श्रीमती उमा की इस बात पर लोग हंस पड़े। अरविंद ने कहा, आप लोग सोचते क्यों नहीं हमारे पास कोई साधन ही नहीं है बोर्डम तोड़ने का।'

श्याम ने बात पूरी कर दी, 'क्योंकि अभी तो आप लोग हमारे लिये बोर्डम पैदा करने में लगे है।'

सब चुप रह गये।

मिसेज भाटिया बोलीं, 'काके, तुझे कतई 'टेबुल मैनर्स' नहीं हैं ? कौन बात कहां कैसे कहनी चाहिए, इसकी समझ होनी चाहिये तुझे !'

'मम्मी, आप ने आज तक मुझे कोई समझ दी भी है।'

डैडी ने कहा, 'अच्छा भई, हमने समझ नहीं दी, तुम लोग पैदा होते ही समझदार हो गये !'

'जी हां आप लागों की जिन्दगी देखकर हम इतने समझदार हो गये कि अब कुछ भी समझ में नहीं आता !' श्याम ने जवाब दिया ?

बातों का आगे बढ़ना, बिल्कुल खतरनाक था, लोग चुपचाप डिनर टेबुल से उठ गये। श्याम अकेले वहीं बैठे रहना चाह रहा था। अरविंद उससे कमरे में चलने के लिये आग्रह कर रहा था।

'ग्यारह बज गये, अब हमें सोने चलना चाहिये।'

'यह किस किताब में लिखा है ?'

'अच्छा, तो मैं भी पूँछू.....।'

दोनों चुप हो गये। अरविंद की खाली परेशान उंगलियां मेज पर न जाने क्या लिखने लगीं। श्याम की आंखें बेहद गंभीर थीं। उसने कहा, 'पूछते क्यों नहीं ? तुम्हें कुछ पूछना था ना ?'

'नहीं, कुछ नहीं।'

श्याम कहने लगा, 'इत्तै बजे सोओ, इतनी उमर तक पढ़ो, इस उमर में बुड्ढे हो जाओ और इस उमर में मर जाओ यह भी कोई जिन्दगी है। यहां की जिन्दगी बिल्कुल गुलामों की जिन्दगी है––सब कुछ यहां दूसरों द्वारा तै किया हुआ है। इसीलिये न यहाँ उत्साह है न जिन्दगी। जिस दिन 'विश्व ओलम्पिक' में पूरा हिन्दोस्तान उस तरह पिटा था, उस दिन मुझे साफ लगा कि मेरे मुल्क में जवानी नहीं है।'

यह कहते कहते श्याम उठ पड़ा। अरविंद ने पूछा, 'आज कोई नशे की पुड़िया चढ़ा ली है क्या ?'

श्याम हंसा, 'आज तो, प्यारे बिना चढ़ाये ही...! देख लेना इसका नतीजा आज रात को अभी थोड़ी देर बाद !'

'क्या ?'

अरविंद हैरान रह गया। श्याम बंगले से बाहर निकलकर मैदान में आकर पुकारने लगा, 'डैडी, बाहर आ जाइए, मेरी बात सुनिये। डैडी...डैडी !'

सामने के बंगले के दुमंजिले पर के कमरे की खिड़की खुली। बिजली की रोशनी बाहर चमक उठीं। उसी रोशनी में से डैडी प्रेम भाटिया का चेहरा दिखा।

'प्लीज, श्याम 'कीप क्वायट जाकर सो जाओ।'

'मेरी बात तो सुनिये।'

'मेरे पास वक्त नहीं।'

'मैं खुद ऊपर आ जाऊं ?'

'नहीं।'

यह कहकर डैडी ने खिड़की बन्द कर ली। श्याम और अरविंद सहन में चुपचाप खड़े थे। बड़ा सन्नाटा था चारो ओर। श्याम जमीन पर लेट कर कान लगाकर सुनने लगा धरती के नीचे से जैसे उस नोट छापने वाली मशीन की हल्की–हल्की सी आवाज आ रही थी झुन झुन झुन... टुंटुन टुंटुन छीं। 'सुनों सुनों, अरविंद, सुनों !'

अरविंद भी उसी तरह कान लगाकर सुनने की कोशिश करने लगा। तभी एाकएक वहां पुलिस की दो जीपें आयीं। पुलिस के लोग इधर–उधर छिपकर आगे बढ़ने लगे––बंगले को चारों ओर से घेरने लगे। श्याम ने दौड़कर अपने कमरे से डैडी के कमरे में फोन किया––'डैडी, पुलिस आप के बंगले को घेर रही है।'

तभी चारों ओर से पुलिस की सीटियां बज उठीं। ऊपर से खिड़की खोलक डैडी ने बाहर देखा और वह बटन दबा दिया। नीचे आग लग गयी। चारों ओर शोर मच गया। राजेन्द्र प्रसाद, उमा, मुक्ता––सब बाहर निकल कर चिल्लाने लगे। सामने के जलते हुए बंगले में से दौड़ती हुई मिसेज ऊषा भाटिया निकलीं।

अरविंद चिल्लाया तेरे डैडी भाटिया साहब ···।'

श्याम ने कहा, 'घबड़ा नहीं, अपने लिए उन्होंने एक चोर दरवाजा बना रखा है पीछे, उसी रास्ते बाहर निकल जायेंगे।'

'नहीं, चारो ओर पुलिस खड़ी है ···और पूरे मकान में आग लग चुकी है।'

तभी श्याम ने देखा––ऊपर खिड़की से डैडी ने एक बंधा थैला फेंका है। वह दौड़ा उस थैले के लिए।

'मत जाओ, उधर आग लगी है। जल जाओगे।' अरविंद ने श्याम को रोकना चाहा, पर वह नहीं रूका। वह भी श्याम के पीछे–पीछे दौड़ा। खिड़की के निचे जहां वह थैला गिरा होगा वहां उन दोनों ने देखा राजूदा पुलिस इंस्पेक्टर से कुछ बातें कर रहे थे।

श्याम थैले को ढूढ़ने लगा। तभी ऊपर से उसके डैडी की चीख आयी 'बचाओ ···बचाओ ···।'

मम्मी ने चीखते हुए कहा 'उन्हें बचाओ ···।'

और वह उस आग की तरफ दौड़ी। श्याम ने आकर दौड़ती हुई मम्मी को बचा लिया। सारी दिशाओं में एक ओर आग बुझाने वाली गाड़ियों की आवाजें गूंज उठीं और दूसरी ओर सबकी चीखें और पुकार ·····

तबसे अब तक एक वर्ष बीतने को है,––अरविंद शिमले की उस दुर्घटना को भूल नहीं पा रहा है। उससे भी ज्यादा वह एक क्षण भी अपने दोस्त श्याम को नहीं भूल पाता। श्याम अपनी मम्मी को लेकर उसी रात न जाने कहां गायब हो गया था और आज तक उसका कहीं अतापता नहीं।

अरविंद ने अकेले हायर सेकेन्ड्री की परीक्षा दी। पर तब से बहुत कुछ बदल चुका है––अरविंद के घर में और स्वयं उसके जीवन में।

पिता जी उस लक्ष्मीबाई नगर के घर को छोड़कर गोल मार्केट के पास एक पुराने स्वंतत्र बंगले में आ गये हैं। उनकी कुछ पदोन्नति भी हो गयी है। माता जी अब यहां ज्यादा खुश हैं। आसपड़ोस की औरतो पर प्रभाव डालने को मिलता है, मुक्ता पास होकर अब पास के 'कान्वेंन्ट' स्कूल में पढ़ने लगी है और अरविंद के शब्दों में 'पहले से ज्यादा बनने लगी है।' लगता है जैसे भाई बहन में कोई रिश्ता नहीं है। इस बात को लेकर घर में अकसर तूफान उठता है।

पर बुनियादी भूचाल और तुफान तो उस दिन आया था, जिस दिन शिमले से अरविंद के माता पिता जी दिल्ली लौटे थे, उस दिन लक्ष्मीबाई नगर के मकान में सुबह ही सुबह आपस में बातें कर रहे थे––'भाई देखो, जिसकी जैसी करनी वैसी भरनी। क्यों नहीं, भगवान तो सबकुछ देखता है। उसके दरवार में देर है पर अंधेर नहीं। देखो न, भाटिया साहब ने सारी चतुराई कर रखी थी––मकान के पीछे चोर दरवाजा भी बना रखा था––पर भाटया साहब अपने कमरे की अलमारी और तिजौरी से रूपये बाहर फेंकने में इत्ते लग गये कि चारों ओर से आग में घिर गये। आखिर भाई, पाप–पुण्य भी तो कुछ होता है ···।'

उस दिन अरविंद को मां बाप की वे बाते इतनी असह्म लगीं कि उसने चाय भरी केतली को फर्श पर पटक कर कहा था––'आप लोग कुछ भी नहीं जानते। अपने आप को बाकी दुनियां से अच्छा–बेहतर समझने के अलावा आप लोग और कुछ नहीं सोचते। सच्चाई जानने के बजाय आप लोग महज बकवास करते हैं और समझते हैं आप ही लोग महज बकवास करते हैं और समझते हैं आप ही लोग सब कुछ हैं ···।'

उस दिन यह सब कहता हुआ अरविंद फफककर रो पड़ा था––बहुत देर तक

सिसक–सिसकर रोता रहा था, और उसके बाद, तबसे जैसे चुप हो गया था। एक मन होता है। वह मां बाप से उस दिन के व्यवहार के लिये माफी मांग ले। दूसरा मन कहता है––नहीं, कभी नहीं, बल्कि उन पर और आक्रमण होन

चाहिये। वह कभी सोचता है––घर से सदा सदा के लिये भाग जाय। पर तत्काल उसे श्याम भाटिया की याद आने लगती है। वह भाग कर कहां गया ? उसकी मम्मी कहां होगी ? उसके नौकर चाकर कहां होंगे ?

वह इस बीच कई बार भाटिया साहब के बंगले पर गया है। हमेशा वहां ताला पड़ा मिला है––एक ताला बाहरी गेट पर दूसरा बंगले पर। उसे अजीबोगरीब खबरें मिली हैं। किसी ने बताया है––सरकार ने सारी प्रापर्टी जप्त कर ली है। कोई कहता है––वह बंगला भाटिया साहब ने पहले से ही किसी के हाथ बेच रखा था। यह भी खबर मिलती है कि मिसेज भाटिया सरकार से मुकदमा लड़ रहीं हैं। मुकदमा जीतते ही अपने बंगले पर लौट आयेंगी।

सब ठीक है। पर हैं कहां मिसेज ऊषा भाटिया––अरविंद की आंटी ? और वह प्यारा बहादुर दोस्त––उसका श्याम ... वह कहां है ? उसे कम कम एक चिट्ठी तो लिखनी थी अपने दोस्त को। यह कभी नही हो सकता कि श्याम अपने दोस्त अरविंद को भूल जाय। या दोस्ती खत्म कर ले। ऐसे क्षणों पर अरविंद को डर लगता––श्याम अक्सर कहा करता था––यहां हर चीज तेजी से बदल रही है। कहीं भी कुछ हो सकता है। सो किसी चीज के लिये दुख अफसोस, सुख संतोष करना सरासर बेवकूफी है। यहां चीजों पर, घटनाओं से आश्चर्य चकित होना केवल बच्चों का स्वभाव है।

कैसा था वह श्याम ? न उसे कोई मोह न माया न उलझन। कितना विश्वास था उसे अपने आप पर ! वह पाप–पुण्य, अच्छा–बुरा, नीच–ऊंच उस तरह नहीं मानता था जैसे लोग मानते हैं––वह हर चीज, जीवन का हर मूल्य या आदर्श स्वयं तलाशने की कोशिश करता था। उस पर वह निर्णय ही नहीं लेता था उसे करके, जीकर दिखाने की हिम्मत भी थी उसमें। अरविंद ने उससे क्या पाया था या उसने अरविंद से क्या क्या पाया था, या दोनों ने अपने अपने घरों और चारो ओर के समाज से क्या पाया था––इस सब को साफ साफ बता पाना मुश्किल था।

अरविंद चुपचाप अपने कमरे में इन्हीं बातों को लेकर उलझा रहता। वह अपने कमरे में रोशनी तक नहीं जलाता था। उसी अंधरे में वह जैसे अपने से बातें करता। उसी काले सन्नाटे में वह जैसे श्याम के संग होता। वहीं बैठे बैठे जैसे वह सारी दुनिया से लड़ता और उन सारी ताकतों से आंखे मिलाता जो इन्सान को विवश करती हैं––अन्याय सहने के लिए और अन्याय करने के लिए। श्याम के डैडी पे वैसा क्यों किया ? वह किसी की सलाह क्यों नहीं माने ? किसी की न सुनी। जब कि वह इतने अच्छे डैडी थे। इतने उदार और समझदार। इसी तरह अरविंद के राजूदा को हरवक्त किस चीज की कमी लगी रहती है। वह अपनी जिन्दगी को हर समय अभावमय क्यों मानते हैं ? उनमें इतने आदर्श हैं––जिन्दगी के पक्के वसूल हैं, पर मां––उमा से इसकदर क्यों प्रभावित रहते हैं ?

और वह मास्टर मनचंदा साहब इतना योग्य है वह, पर लड़कों से ऐसा गंदा व्यवहार क्यों करता है ? हमारे चारो ओर इतनी गरीबी, इतने अन्याय हैं, लोग उनसे लड़ते क्यों नहीं ? खुद अपनी सम्साओं से ही क्यों नहीं पूरी ताकत से लड़ते ? क्यों सिर्फ छोटी–छोटी बातों में ही फंसकर रह जाते हैं, और सारी जिन्दगी को न जाने कबके बने–बनाये चश्मों से ही देखते हैं ?

वह नया बालक कहां है ?

कहां है ? कौन है ? जो अभूतपूर्व हो ... परम साहसी ... निर्भीकि ... किसी निजी सच्चाई के पीछे लगा हुआ ...। इस तरह के विचार समुद्र में खोये हुए, उनमें तैरते हुए।

अरविंद के कमरे में एकाएक मां या मुक्ता या पिताजी ही आकर जब तब बत्ती जला देते, तो अरविंद चौंक उठता। उसको लगता जैसे उस प्रकाश ने जाने कितने अजन्मे शिलुओं को मार दिया है। कभी कभी तो उसे लगता––उसकी दोनों बाहुओं में उसी दैवी गोताखोर की तरह दो पंख निकल रहे थे––जो एकाएक कट गये।

अरविंद को बहुत सारी चीजें 'हांट' करती है। बहुत से चहरे उसके सामने खिंचे रहते हैं और वह एक क्षण भी श्याम को नहीं भुला पाता। जबकि अब उसे धीरे धीरे विश्वास होने लगा है कि श्याम उसे इस तरह कतई नहीं याद करता होगा। श्याम जहां रहता है––जो भी कुछ करता है, उस वक्त, उस जगह बिल्कुल वहीं का हो जाता है।

वही गर्मियों के दिन थे। हायर सेकेंन्ड्री का परीक्षाफल कुछ ही दिनों में आने वाला था। अरविंद को उस फल से कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी, पूरे घर–परिवार को जरूर है। गांव दुल्हेपुर से लेकर इलाहाबाद और दिल्ली तक अनेक लोग उसके नतीजे पर आंख लगाये बैठे हैं।

तभी उस घर में एक मजेदार बात हुई।

अरविंद की मां श्रीमती उमा न जाने कितने दिनों से एक ऐसे 'ब्बाँय सर्वेंट' की तलाश में थीं जो बिल्कुल 'स्मार्ट' हो और घर–गृहस्थी का सारा काम काज जानता हो और साथ ही ईमानदार भी हो। सो ऐसा ब्बाँय सर्वेंट उन्हें मिल गया। उसका नाम था पूरन। पूरन ने एक अखबार में अपनी नौकरी के लिये खुद विज्ञापन निकलवाया था। सो पूरन तमाम बंगलों पर 'इन्टरव्यू' देता फिरा। एक जगह मेमसाहब ने पूरन को पसंद तो कर लिया, पर उसकी तनखाह उन्हें ज्यादा लगी। पूरन डेढ़ सौ रूपये महीने तनखाह और खाना मांगता था। वह मेम साहब उमा जी की सहेली थी। सो उन्होने फोन किया और उमा जी को पूरन बिल्कुल पसंद आ गया।

वह इतवार का दिन था और शाम के चार बजे पूरन घर में दाखिल हुआ। करीब–करीब अरविंद का ही उमर का था पूरन। देखने में आकर्षक, काम में बेहद चुस्त। बातें कम करता था और जैसे सबकी जरूरतें बिना बताये समझता था, और उसे पूरे संतोष के साथ करता था। सुबह राजूदा की कार साफ करता। उसे चमका देता। कार में पानी डालता, इंजिन का तेल देखना नहीं भूलता। फिर सबको नाश्ता कराता और फिर दोपहर का भोजन की तैयारी में मां जी को मदद करता। शाम को माली के साथ फूल–पौधों की सेवा करता। अरविंद और मुक्ता उससे बातें करना चाहते तो वह उनसे सिर्फ मुस्करा कर रह जाता। कित्ते बड़े बड़े बाल थे उसके जैसे अपना पूरा चेहरा वह उन्हीं बालों में छिपा लेना चाहता। शाम को जब बच्चे घर लौटते तो अपने कमरे को इतने करीने से सजा–सवरा देखने कि उन्हें अजीब–सा आनंद होता। उनकी किताबें कापियां, कपड़े लत्ते सब सही जगह पर सजे होते।

कुछ ही दिनों में पूरन उस घर का जैसे मालिक बन गया। सब की जिंदगी धीरे–धीरे उसी के ऊपर जैसे निर्भर होने लगी। तभी एक दिन अरविंद का परीक्षाफल निकला। वह फर्स्ट डिवीजन से पास हुआ था और और मैथमेक्टिस तथा कैमिस्ट्री में उसे डिस्टिक्शन मिला था। सारा घर परिवार खुशी से फूला नहीं समा रहा था। पर अरविंद अपने कमरे में उसी तरह अंधेरे में बैठा चुपचाप रो रहा था।

उस रात पूरन ने दावत देने जैसा 'डिनर' तैयार किया था पर अरविंद के आसूं नहीं रूक रहे थें। वह सिर्फ अपने बिछुड़े हुए दोस्त श्याम भाटिया को ही याद कर रहा था। माता पिता जी और मुक्ता उसे मानकर हार गये थे। वह 'डिनर टेबुल' पर आने को तैयार नहीं हो रहा था उसी अंधेरे में चुपचाप बैठा था और सख्त हिदायत दे रखी थी उसके कमरे में रोशनी न जलायी जाय।

अंत में पूरन गया अरविंद को मनाते। अरविंद ने उसे सख्ती से डांट दिया, 'मैंने कह दिया, कोई मुझसे बकवास न करे। जब मेरा जी होगा तो खा लूंगा।'

पूरन बोला, 'भइया, मैं खाने के लिये नहीं कह रहा, सिर्फ इतनी सी बात आपको एक समझदार लड़के की तरह व्यवहार करना चाहिये। दुख से आंसू से कहीं कुछ नही होता।'

'तु मुझे उपदेश देने आया है ?'

यह उपदेश है ? मैं तो सिर्फ हकिकत बयान कर रहा हूँ, साहब, अगर इन आंसुओं से सवाल हल होते तो अब तक हिन्दोस्तान में एक भी सवाल न होते। सबसे ज्यादा आंसु तो इसी मुल्क में बहाये गये है।'

'खबरदार अगर मुझे फिर साहब कहा !'

'इजाजत हो तो आपका डिनर यहीं ले आऊँ।, उसने गर्दन झुकाकर बड़े नाटकीय अंदाज में कहा।

पूरन की इस अदा पर अरविंद को हंसी आ गयी। कमरे में रोशनी हुई। पूरन अरविंद का खाना ले आया। खाने के बाद अरविंद ने पूरन को दिखाया––'यह है मेरे दोस्त श्याम की तस्वीर। मैं इसे एक मिनट भी नहीं भूल पाता।

पूरन जबसे इस घर में आया है, वह इस घरा की एक–एक चीज को देखता है, पहचानता है––पर उस वक्त उसने श्याम भाटिया कीं तस्वीर को जो अरविंद के सिरहाने टेबुल पर देखी थी,, इस तरह देखा––जैसे पूरन उसे पहचान रहा हो। बर्तन उठाते हुए पूरन बोला, 'साहब . . .।' अरविंद बिगड़ गया, 'साहब मुझ मत कहा करो––कित्ती बार कहा तुझे।'

'माफ कीजिये जी।'

'हाँ, बोलो क्या कह रहे थे ?'

'यही की आप श्याम को क्यों इस तरह याद करते हैं ?'

'करता हूं बस . . .।'

'बीती हुई चीजों को भूल जाना ही सही आदमी की असली आदत होती है।'

यह कहता हुआ पूरन बर्तन लिये चला गया।

एक दिन सुबह ही सुबह मुक्ता दौड़ी हुई अरविंद के कमरे में आयी, 'भइया भइया, सुनो . . .पूरन मुझे चोर लगता है।'

'क्या बकती है ?'

'हां, सच्च . . .मैंने कई बार देखा है––वह घर में एक–एक चीज को टटोलता रहता है। अभी अभी मैंने देखा है––पिताजी की अलमारी खोल रहा था। जैसे ही मैं कमरे में गयी––वह बातें बनाने लगा। सच्ची, भइया, जरा उस पर निगाह रखो' तो उसकी हरकतों का पता चलेगा।'

अरविंद को मुक्ता की बातों पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। पूरन का काम, उसका सारा व्यवहार और चरित्र ऐसा था कि उस इस तरह का शक करना भी गुनाह जैसा लगता था। लेकिन एक दिन खुद उसने अपनी आंखो से देखा––पूरन पिताजी की पुरानी चिट्ठियों और उनके निजी कागजात बड़े ही गौर से पढ़ रहा है तथा दूसरे ही दिन पापा––वह माता जी के स्टोर में चुपचाप खड़ा है। एक दिन उसके सिरहाने अरविंद ने चाबियों का एक बड़ा–सा गुच्छा देखा। अब उसे भी मुक्ता की बातों में सच्चाई नजर आने लगी पर ये सारी बातें ऐसी थी की जिन पर मां बाप को कतई यकीन नहीं हो सकता। उल्टे वे दोनों बच्चों पर ही बरस पड़ेगे। यह भी डर था कि पूरन नौकरी ही छोड़कर चला जाये। फिर तो खास तौर पर माता जी उन्हें कभी नही माफ करेगीं।

अरविंद और मुक्ता आपस में ही बातें करके रह जाते। वे दोनों पूरन पर आंख लगाये रहते उन्हें एक अजीब तरह का आनन्द आने लगा पूरन के पीछे। भाई–बहन में जो इधर कोई रिश्ता नहीं था जैसे जुड़ने लगा। दोनों एक दूसरे के इतने करीब आने लगे कि बिना एक दूसरे से मन की बातें बताये उन्हें चैन नहीं पड़ता।

अरविंद इस बीच एक चीज अनुभव करने लगा। कोई चीज तलाशने में कितना मजा आता है। किसी पीछे लग जाना कितना आनन्द देता है। यहीं शायद मनुष्य को मनुष्य को जोड़ता है। यही मनुष्य वह भाव पैदा करता है, जिससे वह दूसरों में रूचि लेने लगता है। पूरन उतना ही नहीं है––जितना दिखाता है वह न जाने कितना अपने आप में छिपा है––क्या यही बात मुक्ता के लिये सही नहीं ? क्या यही बात स्वयं उसके लिये सही नही ? सब के लिये उतना ही सही नहीं ?

उसे एक और अनुमति हुई––मुक्ता सिर्फ उसकी छोटी बहन नही है––जिसे डाटने, नफरत करने, आलोचना करने का उसे जन्म सिद्ध अधिकार है––बल्कि मुक्ता एक ऐसी लड़की है जिससे उस पारिवारिक–पांरपारिक अधिकार को भूलकर तौड़कर समान भूमि पर बातें करने में एक ऐसा आनन्द है जिसका उसे आज तक पता नहीं था।

अरविंद सोचने लगा––रिश्ते और क्या सिर्फ शोषण और अत्याचार के लिये बनायें गयें ?

एक दिन अरविंद ने मुक्ता से कहा, 'देखो मुक्ता, जब से हमें पूरन के लिये शक पड़ गया है कि वह चोर है तब से हम उस बेचारे के हर व्यवहार को उसी बुरी नजर से देखने लगे है। तभी तो मैं हमेशा सोचता हूं कि किसी के भी लिये कोई निश्चित धारण नहीं बना लेना चाहिये। मतलब किसी से प्रभावित होकर जैसे ही हम उसे 'अच्छा' कहते है, हम उसे 'बुरा' कहने की तैयारी शुरू कर लेते हैं।

मुक्ता बोली 'यह तो सही है भइया, लेकिन पूरन . . .।'

संकोचवश मुक्ता आगे कुछ ना बोल सकी।

अरविंद बोला, 'श्याम अकसर कहता था––हम अपनी आंखों से चीजों को स्वयं नहीं देखते––उसे कानो से जबान से देखते है।' आज समझ में आयी उसकी टेडी बात।'

दोनों हंस पड़े। दोपहर का वक्त था। उस कमरे में एअर कंडीश्नर' लगा था। कमरा ठंडा था। एकाएक उस कमरे में पूरन आया, 'माताजी ने कहा है, दोपहर में थोड़ी देर सो जाइए।' मुक्ता बोली, 'अच्छा हम सो जायेंगे––तुम क्या करोगे ?'

'मैं भी इसी कमरे में दुपहरी काट लुंगा।'

'नहीं, तुम यहां नहीं सो सकते !'

'मुक्ता, ऐसे नहीं बोलते।'

अरविंद ने पूरन को देखा। वह कमरे से बाहर चला गया। दोनों डरे डरे से बातें करने लगे। ऐसे नौकरों को कमरे में नहीं सोने देना चहिये। गला घोट सकते हैं। दुपहरी में कौन सुनता–देखता है ? यह जरूर कोई स्कीम बना रहा है।

अरविंद को सहसा हंसी आ गयी, 'देखो न हम खामखा पूरन के बारे में कितनी बातें सोचते चले जा रहे हैं।

मुक्ता बोली, 'हमें अपने घर में चौबिस घंटे का एक काम मिल गया है––पूरन का पीछा करना ...उस पर नजर रखना अरविंद बड़ी देर तक चुप रह कर बोला, 'किसी को कोई लक्ष्य मकसद मिलजाता है तो कितना मजा आ जाता है। हर वक्त उसी लक्ष्य की तलाश, पाने की कोशिश उसे एक बिल्कुल नयी जिन्दगी दे देती है।'

तभी घर में कुछ गिरने की आवाज आयी। दोनों कमरे से बाहर निकल कर पूरे घर में देखने लगे कि कहां क्या चीज गिरी है ? और वह पूरन कहां है ?

अरविंद ने देखा–– पिता जी के कमरे का पलंग एक तरफ खींचा गया है। उस पर पांव रखकर कोई अलमारी पर चढ़ा था। अलमारी के ऊपर जो अटैची रखी थी, वह नीचे फर्श पर गिरी थी।

और वह पूरन कहां है ? दोनों अलग अलग पूरे घर और अहाते में उसे ढूढ़ने लगे। वह कहीं नहीं दिख रहा था। मुक्ता दौड़ी हुई बाहर के बाथरूम में घुसी।

वहां मिला पूरन––वह उस लोहे के छोटे से वक्से को तोड़ रहा था––जिसमें पिता जी की सारी चाभियां रखी जाती है।

मुक्ता को देखते ही पूरन ने तड़प कर उसका मुंह बंद कर दिया, 'खबरदार, अगर किसी को बताया। जान से मार दूंगा ही...।'

मुक्ता उस पूरन का मुंह देखती रह गयी।

मुक्ता उस दिन बिल्कुल सन्न रही। रात भर वह नहीं सो पायी। अंत में उसने अरविंद को बता दिया। तब वे भाई–बहन बिल्कुल साथ–साथ रहने लगे। मां बाप को बताया। पर उसी दिन एक अजब बात हो गयी। पूरन को बाहर लॉन पर एक पर्स पड़ा मिला। पर्स में एक कार्ड था उस पर्स के मालिक का पी.सी.चक्रवर्ती चीफ इंजीनियर पता और टेलीफोन नम्बर।

पूरन उस पर्स को लिये राजूदा के पास आया। उसे उनके हाथों में देकर बोला, 'सर, जिसकी चीज है,––उसे खबर कर दीजिये।'

उमा ने देखा पर्स में सौ सौ के दस नोट हैं। एक एक ने उस पर्स को देखा। राजूदा ने फोन किया। चक्रवर्ती साहब खुद दौड़े आये। पर्स पाकर आश्चर्यचकित रह गये। पूरन को सौ का एक नोट इनाम के तौर पर देने लगे। मगर लेने से इंकार किया। वह बोला, इसमें इनाम की क्या बात। जिसकी जो चीज है उसे मिलनी ही चाहिए।'

इंजीनियर साहब ने उसे एक अच्छी नौकरी देनी चाही। उसे भी अस्वीकार करते हुए बोला, 'धन्यवाद, मैं इसके बदले कभी कुछ नहीं लेना चाहता।'

घर में इस घटना को लेकर दो दल बन गये थे। अरविंद और मुक्ता का कहना था, पूरन की यह चाल है। वह हमें अपनी इमानदारी से प्रभावित किये रहना चाहता है। क्योंकि उसकी नजर यहां बड़ी चीज पर है। पूरन पर विश्वास करना खतरनाक है।

पर मां बाप का पक्का विश्वास जमा था पूरन पर। उनका कहना था, आज इतने महीने हो गये इस घर की एक चीज भी न खोयी। न कोई चीज टूटी फूटी। पूरन ईमानदार है...तभी उसने उस तरह मुक्ता को डराया है। वह बच्चों के मुंह नहीं लगता, वह किसी के घर आता–जाता नहीं, वह किसी नौकर से मिलता–जुलता तक नहीं अगर वह चोर चंडाल बेइमान होता, तो उसके रंग ढंग कुछ और होते।

एक दिन सुबह कुछ कुछ अंधेरे में पूरन बंगले के पीछे––दीवार के परे की झाड़ी में कूदा। दीवार फांद कर। अरविंद ने उसका पीछा किया––सिर पर लिया–ताकि वह उसे सहसा पहचान न सके।

पूरन उस झाड़ी में गायब हो गया। अरविंद पास ही एक नीम के पेड़ पर चढ़ गया। दातुन तोड़ने के बहाने––वह उसी ऊंचाई से झाड़ी में पूरन को देखने लगा।

पर वह कहीं दिख नहीं रहा था।

थोड़ी ही देर में पूरन झाड़ी के बाहर आ गया। उसके हाथों में लाल लाल रंग के बेहद खूबसूरत फूल थे। अरविंद उसके पीछे पीछे ही घर में आया। तब तक सब लो जग गये थे। पूरन माता जी को फूल देकर बोला, 'मां जी, आज इन फूलों से भगवान की पूजा कीजिये।'

मां की आवाज अरविंद के कानों में टकरायी, 'पूरन बेटे' अरविंद मुक्ता की बातों का कभी बुरा मत मानना, बच्चे हैं। देखते नहीं ये लोग गुस्से में आकर मां बाप से कैसे बोलते है।'

पूरन चापलूसी करते हुए बोला, 'हां मां जी, आजकल जमाना ही बदल गया है˙˙˙।'

अरविंद मन ही मन जल गया––बदमाश कहीं का˙˙बातें बनाना इसे खूब आता है। मक्कार कहीं का। तेरी एक एक चाल समझता हूं।' जिस दिन तू मेरी पकड़द मे आ गया––मैं तुझे छोड़ूगा नहीं। देख रहा हूं तेरा खेल। तेरे पास अगर दिमाग है तो हमारे पास तुझसे कम नहीं है। एक तेरा लक्ष्य है––तो एक हमारा भी लक्ष्य है। बेटे, तुझे रंगे हाथों न पकड़ लिया तो मेरा नाम नहीं।

इसी बीच उमा की छोटी बहन रमा मेरठ में आयी थीं। उन्हें बच्चा होने वाला था। उमा मेरठ चली गयी। उस दिन पूरन ने राजूदा से कहा, 'सर, सर आज बाहर सोइये देखिये न, कितनी अच्छी हवा चल रही है।' इस मौसम में कमरे के भीतर सोने में कितनी घुटन है। कितना 'एयरकंडीश्नर' चले, पर खुली हवा में सोने का मजा ही कुछ और है।'

पर पूरन की दाल न गली। राजूदा बाहरों महीने अपने उसी कमरे में सोने वाले, वह क्यों मानते किसी की भी बात।

पूरन जब से इस घर में आया है वह तरह से कोशिश करता रहा है कि एक रात राजूदा का कमरा सूना पा जाय। पर हमेशा वह असफल रहा है। वह कभी बाहर छुट्टी पर भी नहीं जाते। उसने हमेशा मार्क किया है––वही असली कमरा है इस घर का। पूरन ने उस घर की एक एक चीज छान डाली है––पर जो वह इस घर में ढूढ़ने आया है––वह जैसे नहीं मिली है। उसने बैंक में आकर इस घर का एकाउन्ट नम्बर बताकर जमा खाता पूछ लिया है। इस घर में एक एक बक्से, एक एक अलमारी को छान डाला है–– पर जैसे आज तक उसका लक्ष्य नहीं मिल पाया है।

और अब उसे निश्चित हो गया है कि उसका लक्ष्य वही राजूदा का कमरा है। वह अपने उस कमरे को छोड़कर बाहर क्यों नहीं सोते उस जगह को कभी खाली क्यों नही रखते ?

उस रात सब लोग घर के अंदर ही सोये। अरविंद और मुक्ता अपने कमरे में और राजूदा अपने उसी कमरे में।

रात के दो बजे थे। जून महीने की तेज आंधी चल रही थी। पूरन ने घर की बिजली का 'मेंन आफ' कर दिया। राजूदा अपना कमरा खोलकर बाहर निकले। पूरन दरवाजे पर ही मिल गया, 'सर, आंधी की वजह से बिजली चली गयी।'

'हां, ऐसे ही होता है।

यह कहकर वह अपने कमरे में चले गये। दरवाजा खुला रहने दिया। थोड़ी ही देर बाद राजूदा फिर सो गये। उनकी नाक बजने लगी।

पूरी तैयारी के बाद पूरन उस कमरे में घुसा। पलंग के नीचे के फर्श को उंगलियों से बजा कर बड़े ध्यान से सुनने लगा कि वह चीज जो वह इस घर ढूढ़ने आया है––नीचे जमीन में कहां गड़ी है ? एकाएक राजूदा के मुंह से निकला, 'कौन ? कौन है ?' पूरन ने दौड़कर राजूदा का गला पकड़ लिया, 'बोला कहां छिपाया है वह धन ? झटपट बता, वरना खैर नहीं।'

'कौन है तू ?' नींद में जैसे कोई डरकर बोलता है, ठीक वैसे राजूदा बोले।

'मैं भूत हूं प्रेम भाटिया का। दे दे वह धन। बता कहां छिपाया है ?' भूतों जैसी आवाज में पूरन बोला। राजूदा उससे संघर्ष करने लगे। पूरन उनको गला जैसे दबोच देना चाह रहा था संघर्ष तेज हो गया उस अंधेरे में। बाहर

खिड़कियों पर आधीं अपने असंख्य सिर पीट रही थी। पूरन उन्हें छोड़कर कमरे से बाहर निकल गया। बरामदे में अपने बिस्तर पर जा कर सो गया। राजूदा अजीब आवाज में पुकारते रहे पूरन ...अरविंद ...मुक्ता ...दौड़ो।'

सबसे पहले अरविंद की आंख खुली। बिजली जलायी। कोई रोशनी नहीं। टार्ज जलाये वह पिता जी के कमरे में दौड़ा। पिता जी पलंग पर बैठे अजीब तरह से हांफ रहे थे। वह पसीने से तर थे। उनके मुंह से को साफ बात नहीं निकल रही थी। अरविंद ने उन्हें पानी पिलाया। अपने आप को सम्हालते हुए वह बोले, 'भूत ...भूत.. मेरा गला पकड़ लिया। मैंने सुना ..प्रेम भाटिया का भूत .. हाँ, हाँ, वह खुद बोला। वह कुछ मांग रहा था ...।'

उधर पूरन ने धीरे से बीजली का 'मेन स्विच' आन, कर दिया। घर में बिजली जल उठी। थोड़ी देर बाद वह खुद आया राजूदा के कमरे में। उनका भयभीत मुख और खौफनाक बातें सुनकर पूरन कहने लगा––'जि हाँ, सर, यह सही है। आदमी जिस दुःख से मरता है ...भूत बन कर उसी चीज की तलाश करता है।'

अरविंद से न रहा गया। उसने कहा, 'कुछ लोग जिंदा ही राक्षस बनकर न जाने क्या तलाशते हैं।'

पूरन चुप रह गया। मुक्ता भी जागकर आ गयी। सुबह तक लोग जगे बैठे रहे। चौके में पूरन अपने आप से कुछ बड़बड़ा रहा था––'खरियत इसी में है कि वह नोट भरा थैला उसे वापस कर दें नहीं तो आन खतरे में पड़ जायेगी। जिसका धन है वह कैसे भी उसे लेकर रहेगा।'

अरविंद ने राजूदा को बताया। उन्होंने पूरन से पूछा, वह क्या बड़बड़ा रहा था ? वह झट बात बदल गया। अगले दिन माता जी मेरठ से लौटीं। घर की उस दुर्घटना को सुनकर वह तपाक से बोलीं, 'जरूर यह भूत प्रेत का मामला है। किसी ने मुझे बताया था––यहा भुतहा बंगला है, तभी तो यह इतने दिनों तक खाली था।'

अरविंद मां के विचार सुनकर ताज्जुब में पड़ गया––मेरी यह मां कैसी है ? कहां की है ? गांव की, कस्बे की, शहर की भी नहीं। इनके विश्वास अविश्वास की न तो काई सीमा है, नाहीं कोई निशचित आधार !

अगले दिन से उस घर में पूजा शुरू हुई। उस कमरे में एक लाख गायत्री मंत्र का जाप हुआ। और भी न जाने क्या क्या टोटके, मंत्र तंत्र हुए उस कमरे में। पूरन वह सब कुछ चुपचाप बडे ध्यान से देखता रहा। कमरे का सारा पूजा पाठ तंत्र मंत्र देखकर उसके मन का विश्वास और पक्का हो गया कि जरूर सारा धन उसी कमरे में कहीं गड़ा हुआ है।

एक दिन और विचित्र बात हुई। राजूदा के नाम एक गुमनाम चिट्ठी मिली। चिट्ठी में लिखा था––

'राजेन्द्र प्रसाद जी को मालूम हो कि अब बात हद से ज्यादा बढ़ गयी। माना कि आप इत्ते बड़े सरकारी अफसर है, मगर जो विश्वासघात आपने अपने दोस्त प्रेम भाटिया जी के साथ किया है वह कभी माफ नहीं किया जा सकता। आप इत्ता गुनाह यूं हीं चुपचाप हजम कर लेने को सोच रहे हैं, वह आपकी सरासर बेवकूफी है। सब ने देखा है, जो नोटों से भरा थैला प्रेम भाटिया जी ने उस वक्त जलते हुए घर की खिड़की से बाहर फेंका था उसे आपने हथियाया है। अब आपकी खैरियत इसी में है कि बुधवार के दिन तारीख तीस जून को रात के ठीक बारह बजे नोटों से भरा वह थैला विरला मंदिर के पिछारे जो एक टूटा हुआ मंदिर है––वहां लाकर रख दीजिए। अगर आप ऐसा नहीं करते तो इसी पहली जुलाई का आप इस दुनिया में नहीं रहेंगे। हमें जो कहना था, वह साफ साफ लिखकर कह दिया, आगे सारी जिम्मेदारी आप की है।'

इस खत को पढ़कर राजूदा के हाथ पैर फूल गये। श्रीमती उमा प्रसाद रोने लगीं। प्रसाद साहब ने कहा––'हे भगवान, यह कैसा वज्त्रपात ! मैंने उस थैले को तब देखा तक न था। यह कैसा कलंक मेरे माथे लगाया जा रहा है ?'

अरविंद ने पिता जी से कहा, 'यह सच है, पर आप ही पर यह शुबहा क्यों किया गया ?'

'यह मेरा दुर्भाग्य है।

'नहीं। मैं समझता हूँ, चूंकि आपको रूपयो की, और धन की हमेशा बड़ी लालच रही है, इसलिये ...।'

'क्या बकता है ?

'क्या यह गलत है ?'

'बिल्कुल गलत।'

फिर आप ही पर यह शक–बल्कि विश्वास क्यों किया जा रहा है ?' यह सब तेरी बजह से हुआ हैं ! तेरी श्याम भाटिया से इतनी दोस्ती न होती तो हम उस गंदे–बेइमान परिवार के इतने ही क्यों जाते ?'

अरविंद बड़े विश्वास के साथ बोला, 'प्लीज, मुझे समझाइए पिताजी, सिर्फ लालच, इच्छा, भूख में जिन्दा रहना बेहतर है या उस भूख लालच इच्छा को हमेशा हमेशा के लिये मिटा देना ?'

पिताजी आवेश में बोले, 'तेरा मतलब है––वह प्रेम भाटिया मुझसे बेहतर था ? उसने जो किया अच्छा किया ?'

'पता नहीं।'

पिता जी का गुस्सा देखकर अरविंद उनके सामने से हट गया।

आखिर वह तीस जून की रात आन पहुँची। माता–पिता दोनों बेहद परेशान। वे कोई फैसला नहीं कर पा रहे थे कि यह मामला पुलिस को दिया जाये या वहां चलकर उन अज्ञात लोगों से मिला जाय और सारी सफाई दी जाय। उन्हें पहली बार शक कि हो सकता है, उस निश्चित स्थान और वक्त पर वहां वह श्याम भाटिया मिले। वह निश्चय ही समझदार लड़का है, उसे सारी बात सही स्थितियां बड़े कायदे से समझायी जा सकती हैं।

पर अरविंद ने पिता जी से को सलाह दी कि वह फौरन पुलिस को इत्तला दे। पिता जी डर रहे थे। कि पुलिस को खबर देने से बदनामी होगी। उनकी नौकरी और प्रतिष्ठा पर चोट पहुँचेगी। इस पर अरविंद जैसे बिल्कुल बौखला पड़ा, 'आप लोग हर वक्त हमेशा वही देवता बना रहना चाहते हैं––अकर्मण्य, लालची, चापलूस बुज्दिल देवता––कर्म, फैसला लेना राक्षसों का काम समझते हैं––तभी यहां इतनी बेइमानी है झूठ है गरीबी और पिछड़ापन है। अपनी सारी जिन्दगी भूत से बांधकर देखते हैं और जीते हैं। भविष्य में ... वर्तमान––'प्रजेन्ट' गायब है सारी जिन्दगी से।'

'चुप रहो।'

यह कहते हुए पिता जी ने अरविंद के मुंह पर एक ऐसा झापड़ मारा कि वह जमीन पर जा गिरा। पर वह चुप नहीं हुआ। 'मैं राक्षस से नहीं, सिर्फ देवता से डरता हूँ।'

लेकिन अरविंद न माना और उसने दौड़कर टेलीफोन उठा लिया, 'हेलो, पुलिस ... जल्दी आइए ... पता नोट कीजिये ...।'

देखते देखते पुलिस की गाड़ी बंगले पर आ गयी। अरविंद ने पुलिस को बताना शुरू किया कि पिता जी सामने आ गये। उन्होंने पुलिस को वह चिट्ठी दिखायी। तय हुआ कि राजेन्द्र प्रसाद जी ठीक समय से उस स्थान पर जायेंगे और पुलिस छिपकर ...।'

उस घर के लिये यह इतनी बड़ी दुर्घटना थी कि सारा ही उलट–पलट हो गया। पुलिस के साथ राजूदा चले गये। उमा पड़ोस के घर में चली गयी। अरविंद और मुक्ता आस पड़ोस के अपने दोस्तों के साथ बातों में लग गये थे।

पूरन को उसकी मनचाही स्थिति मिल गयी। वह उस राजूदा के कमरे को भीतर से बंद करके पत्थर तोड़ने वाले फावड़े से फर्श को तोड़ने लगा।

उधर ठीक बारह बजे उस स्थान पर राजूदा ने करीब एक धंटा इंतजार किया। कहीं कोई नहीं दिखा।

इधर करीब आधे घंटे बाद उमा जी अपने घर पर लौटीं। अपने कमरे को भीतर से बंद पाया। कमरे में कुछ खोदे जाने जैसी आवाज सुनकर घबड़ा गयीं।

'कौन है ? कौन है।' वह शोर मचाने शुरू हुई, पूरन ने तेजी से दरवाजा खोलकर मां को अंदर खीच लिया और उनका मुंह––हाथ पैर बांधकर कमरे को फिर भीतर से बंद कर लिया।

'बोलो बताओं, कहां है वह धन ? कहां गाड़ रखे हैं प्रेम भाटिया के वे पांच लाख रूपये ?' पूरन यही पूछता जा रहा था और जमीन को पूरी ताकत से खोद रहा था।

थोड़ी देर बाद बंद दरवाजे पर अरविंद और मुक्ता की दस्तक और आवाजें आयीं। पूरन ने फिर उसी तरह दरवाजा खोलकर उन दोनों को अंदर खींच कर दरवाजा बंद करना चाहा। अरविंद पूरी ताकत से अरविंद नर झपटा। दोनों में हाथापाई और मारपीट होने लगी। मुक्ता चीखतीं हुई बाहर भागी। अरविंद उसे गिराकर सीने पर चढ़ बैठा। संघर्ष कर पूरन ने अरविंद को जमीन पर दे मारा। अरविंद ने पूरन के बड़े बड़े बालों को मुठ्ठियों में कसकर पूरी ताकत से खीचा पूरन तड़पा और पूरन ने दौड़कर दौड़कर फावड़ा उठा लिया और अरविंद पर आक्रमण करने चला कि तभी अरविंद चीखा 'श्याम !'

हां, वह पूरन नहीं श्याम ही था। उसके हाथों में तना हुआ वह फावड़ा शून्य ही में कांप कर जमीन पर गिर गया। अरविंद को लगा जैसे वह कोई स्वपन देख रहा है। उसकी आखों के सामने कभी अंधेरा छा जाता कभी तेज रोशनी फैल जाती। श्याम उस कमरे में मूर्तिवत निश्चेष्ट खड़ा था।

मां को बंधनमुक्त करते हुए अरविंद ने पूछा, 'तूने यह सब क्या किया ?' उसी समय कमरे में मुक्ता के साथ पिता जी दाखिल हुए। कमरे का वह सारा दृश्य देखकर कांपने लगे।

मां ने रोते हुए कहा, 'देखते क्या हो, पुलिस बुलाओ। यह खड़ा है चोर ... हत्यारा ... डाकू ... चारसौ बीस।'

'कौन है यह ?'

'पूरन के भेश में यह वही श्याम भाटिया है !'

'श्याम भाटिया ?' पिता जी की आंखें खिची रह गयीं।

'हां, श्याम भाटिया मेरा दोस्त।' अरविंद के मुंह से निमला।

'पुलिस के हवाले करो इसे।' मां दौड़ी फोन करने।

अरविंद ने मां को पकड़ लिया, 'क्यों मां, यह अपना ही धन तो यहां तलाशने आया था। हां हां, अपना धन ... वही पांच लाख रूपये।'

'कैसा धन ? किसके पास है इसके बाप का धन ? कहां है वह ?'

श्याम बोला, 'मैंने तलाश लिया, वह धन आपने नहीं लिया।'

'तो वह गुमनाम चिट्ठी तूने भेजी थी ?'

'हां मैंने ही ! मुझे आज वह खोया हुआ धन मिल गया।'

'कहां है ?'

'मेरा विश्वास मुझे वापस मिल गया !' श्याम बोला

'पर तूने यह सब क्यों किया ?'

'इसका उत्तर मेरे स्वर्गीय डैडी के पास है, मास्टर मनचंदा के पास है और इस पूरे समाज के पास है, जहां हम सांस ले रहे हैं।

सह कहते कहते श्याम हंस पड़ा और हंसते–हंसते रोने लगा। अरविंद ने बढ़कर श्याम को अपने गले लिया।

'चलो, आज हम अपने अपने राक्षस से बातें करे।'

'कैसा राक्षस ? तेरा दिमाग तो सही है ?' मां ने गुस्से में कहा।

अरविंद एक अजब सी मर्मभेदी दृष्टि से मां बाप और मुक्ता को देखने लगा। और वही दृष्टि अंत में घूमकर श्याम पर टिकी रह गयी।